UPNUL/2013/51445 ISSN 2277-5854

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग

(आगमतन्त्र की शोधपत्रिका)

(षाण्मासिकी)

संस्थापक सम्पादक
श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी
(सीताराम कविराज)

सम्पादक मण्डल
प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी
सम्मानित आचार्य, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र
संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्रीविद्यासाधनापीठ
वाराणसी (उ.प्र.)

वर्ष 6 अङ्क 1

श्रीविद्या साधना पीठ शिवसदन गणेश बाग, नगवा, वाराणसी के लिये प्रकाशानन्दनाथ द्वारा श्रीविद्या साधना पीठ, शिवसदन, गणेश बाग, नगवा, वाराणसी से प्रकाशित एवं स्टार लाईन भवन संख्या बी १३/९० सोनारपुरा, वाराणसी से मुद्रित।

अगस्त, २०१६

सम्पादक :
प्रो. श्रीकिशोर मिश्र
डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

प्राप्तिस्थान
प्रकाशन विभाग
श्रीविद्यासाधनापीठ
शिवसदन, गणेशबाग, नगवाँ, वाराणसी
दूरभाष : ०५४२-२३६६६२२

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

सङ्गणकटङ्कित :
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
स्टार लाईन
सोनारपुरा, वाराणसी।

मूल्य : १२५/-

नोट : इस अंक में प्रकाशित समस्त लेखों के सम्बन्ध में सभी विवाद वाराणसी न्यायालय के अधीन होंगे।

UPNUL/2013/51445 ISSN 2277-5854

ŚRĪVIDYĀ MANTRAMAHĀYOGA

Āgamic-Tāntric Research Journal

(Bi-annual)

Founder-Editor

Sri Dattātreyānandanāth

(Sitaram Kaviraj)

Editorial Board

Prof. Kamaleshdatta Tripathi

Emeritus Professor, Faculty of S.V.D.V.
BHU, Varanasi-5

Prof. Shree Kishore Mishra

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,
BHU, Varanasi-5

Dr. Rajendra Prasad Sharma

Head, Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur.

ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA

Varanasi (U.P.)

वर्ष 6 अङ्क 1

Printed and Published by Prakashanand Nath on behalf of Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.
Printed at Starline, H. No.-B-13/90, Sonarpura, Varanasi and Published at Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan, Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.

August**, 2016**

Editor :
Dr. Rajendra Prasad Sharma

Publications are available at :
Publications Department
ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Shiv Sadan, Nagawa, Varanasi-221005
Ph. 0542-2366622

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

Type Setting :
Vishal Computers, Jaipur.

Printer :
Starline, Sonarpura, Varanasi

Price : 125/-

Note : Any dispute arising on articles published in this issue shall be decided under the jurisdiction of Varanasi Court only.

विषय–सूची

सम्पादकीय

शोधलेख

1.	निगमागमीय गणपति तत्त्वविमर्श	डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय	1–28
2.	शास्त्रीय–मनोविज्ञान के मानक एवम् कुण्डलिनी योग	डॉ. आशुतोष आङ्गिरस	29–32
3.	उपनिषदों में कुण्डलिनी विमर्श	डॉ. शम्भु कुमार झा	33–41
4.	सूक्ष्मशरीरस्थ चक्र-प्रवाहों के स्थान, कार्य एवं जागरण की फलश्रुतियाँ	डॉ. विजय श्रीवास्तव	42–47
5.	श्रीसद्गुरुदर्शिता कुण्डलीसाधनाविधिकारिका	प्रो. कमलचन्द्रयोगी	48–49
6.	सनातनधर्मसम्मत साधना के क्रियापक्ष के मार्गदर्शन हेतु कतिपय टिप्पणी	कल्याणानन्दनाथ	50–57
7.	परशुरामकल्पसूत्र में दीक्षा का स्वरूप एवं महत्त्व	प्रभात कुमार राय	58–62

8.	The concepts of *Devimāna Gaṇanam.*	Geetha Padmanabhan	63–75
9.	वैदिकसाहित्ये वाक्तत्त्वमीमांसा	भास्कररायः	76–83
10.	पराशक्तिसाधनापद्धतयः	भूदेवशर्मा	84–87
11.	तन्त्रेषु शक्तिसाधनाविषयिकाचारविविधताविमर्शः	पूरनचन्द्रजोशी	88–93
12.	षट्चक्र का सैद्धान्तिक स्वरूप	डॉ. देवेन्द्र कुमार शर्मा	94–99
13.	महाभारत में वर्णित प्राचीन दर्शन	डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	100–104

सम्पादकीय

सौभाग्य का विषय है कि परमपूज्य गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से इस वर्ष आयोजित 'कुण्डलिनी साधना' विषयिका संगोष्ठी (11-12 जनवरी, 2016) के अवशिष्ट आलेख इस अङ्क में प्रकाशित हो रहे हैं। अग्रिम सत्र में 'त्रिपुरा सुन्दरी साधना' विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय के दर्शन विभागस्थ उच्च अध्ययन केन्द्र में संगोष्ठी आयोजित करने का निश्चय किया है जिसमें सभी श्रीविद्योपासक साधक एवं सुधी लेखक आमन्त्रित हैं।

इस अङ्क के प्रथम आलेख 'निगमागमीय गणपति तत्त्व विमर्श' में गम्भीर शोध अध्येता डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय ने वैदिक, पौराणिक, तन्त्रागमीय साहित्य में निरूपित गणपति तत्त्व का विशद प्रामाणिक विवेचन सुस्पष्ट किया है जो सर्वथा वन्द्य है। गणपति के परब्रह्म स्वरूप को विश्लेषित करते हुए साधना के विविध आयामों को प्रदर्शित किया है। दुर्लभ ग्रन्थों पर आधारित यह विस्तृत आलेख गणपति विषयक शङ्काओं का सटीक समाधान प्रस्तुत करता है।

द्वितीय आलेख 'शास्त्रीय मनोविज्ञान के मानक एवं कुण्डलिनी योग' विषय पर तन्त्रागम के गहन मर्मज्ञ डॉ. आशुतोष आङ्गिरस ने पावर प्रजेंटेशन के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यद्यपि इस आलेख में उन्होंने सूत्र रूप लिखा है जबकि उनके व्याख्यान से कई गम्भीर शास्त्रीय रहस्य सुस्पष्ट होते हैं।

तृतीय आलेख 'उपनिषदों में कुण्डलिनी विमर्श' में डॉ. शम्भुकुमार झा ने कुण्डलिनी के विषय में गम्भीर शास्त्रीय रहस्यों को अनावरण किया है तथा उपनिषदों के प्रामाणिक उद्धरण दिये हैं जो साधकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं समुपयोगी हैं।

चतुर्थ आलेख 'सूक्ष्मशरीरस्थ चक्र-प्रवाहों के स्थान, कार्य एवं जागरण की पुलश्रुतियाँ' में डॉ. विजय श्रीवास्तव ने तन्त्र के शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर षट्चक्रों के शास्त्रीय स्वरूप को स्पष्ट करने का महनीय कार्य सम्पन्न किया है, एतदर्थ हार्दिक साधुवाद।

पञ्चम आलेख में प्रो. कमलचन्द योगी ने कुण्डलिनी साधना के सारभूत नियमों को पद्यमय सूत्ररूप में प्रस्तुत किया है तथा आचार्य शङ्कर की दृष्टि को सुस्पष्ट करने का उत्तम प्रयास किया है।

षष्ठ आलेख 'सनातनधर्मसम्मत साधना के क्रियापक्ष के मार्गदर्शन हेतु कतिपय टिप्पणी' में श्रीविद्याके वरिष्ठ साधक कल्याणनन्दनाथ जी ने शास्त्रीय साधना के सूक्ष्म स्वरूप को सुस्पष्ट करते हुए कतिपय आवश्यक नियमों का उद्घाटन साधक हित में करने का अनुपम प्रयास किया है। साथ ही कर्मकाण्ड की सहज सफलता के शास्त्रीय मार्ग को विधिवद् आचरण करने की अभिप्रेरणा सुव्यक्त की है। इस आलेख में साधनोपयोगी सूक्ष्म बातों का स्पष्टीकरण बहुत उपयोगी है। आलेख शास्त्र के साथ अनुभव की मर्यादा से संयुक्त है।

सप्तम आलेख 'परशुरामकल्पसूत्र में दीक्षा का स्वरूप एवं महत्त्व' विषय पर जिज्ञासु शोधार्थी प्रभात कुमार राय ने गहन शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रमाण के रूप में मूल सूत्रों को समुपस्थित कर दीक्षा की शास्त्रीय विधि निरूपित करने का उत्तम प्रयास किया है।

अष्टम आलेख 'The Concept of Devimana Gananam' में वरिष्ठ श्रीविद्योपासिका श्रीमती गीता पद्मनाभन् ने तान्त्रिक अष्टाङ्ग के आधारों की समीचीन समीक्षा कर साधकों का अनुपम उपकार किया है। समादरणीय गीता जी चेन्नई से प्रतिवर्ष श्रीविद्या का अष्टाङ्ग निर्माण करके श्रीविद्यासाधकों को नि:शुल्क वितरण की सेवा करती हैं। इस गहन शास्त्रीय लेख के लिए सादर साधुवाद।

'वैदिकसाहित्ये वाक्तत्त्वमीमांसा' विषयक नवम आलेख में तन्त्रागम के शोधार्थी भास्कर राय ने वैदिक साहित्य की विविध उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन कर वाक् देवी के प्राचीनतम स्वरूप को सुविवेचित किया है। यह लेख गहन शोधपरक है।

दसम आलेख में श्रीविद्योपासक पं. भूदेव शर्मा ने 'पराशक्तिसाधनापद्धतय:' लेख में शक्ति उपासना के रहस्यों को प्रकट करके साधकों का महान् उपकार किया है।

एकादश आलेख में शोधार्थी पूरणचन्द्र जोशी ने तन्त्रों के विविध आचारों का सुस्पष्टीकरण किया है।

द्वादश आलेख में डॉ. देवेन्द्र कुमार शर्मा ने 'षट्चक्रों के सैद्धान्तिक स्वरूप' में नाद, बिन्दु तथा कला के रहस्यों को उन्मीलित करते हुए षट्चक्रों का प्रामाणिक स्वरूप सुवर्णित किया है। एतदर्थ हार्दिक साधुवाद।

अन्तिम आलेख 'महाभारत में वर्णित प्राचीन दर्शन' में प्राचीन दर्शन के विवेचन क्रम में पाञ्चरात्र को महाभारतकार का मूलदर्शन प्रतिपादित किया है साथ में वैदिक शास्त्रों की सारभूत गीता का दर्शन सुस्पष्ट किया है।

यह अङ्क न केवल अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण सामग्री को साधकों के लिए उपलब्ध कराता है अपितु नई अनुसन्धानपरक रचनाओं के द्वारा तन्त्रशास्त्र की उपादेयता पर विचार करता है। हमें विश्वास है कि साधक वर्ग में इस अंक का भी यथापूर्व स्वागत होगा और यह उनके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

निगमागमीय गणपति तत्त्वविमर्श

डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय

सर्वलोकवन्दित भगवान् गणेश की अर्चना का आलोक मात्र भारतवर्ष को ही नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न भागों को भी सदियों से उद्भासित करता आ रहा है। वाचस्पति विनायक की आराधना का जो प्रदीप अनेक शताब्दियों पूर्व विदेशों में जलाया गया था, वह आज भी सतत निर्धूम तथा निष्कम्प जल रहा है। इससे भगवान् गणेश की विश्वव्यापी प्रभविष्णुता लोकमानस में प्रतीयमान है।

भारतीय धर्मोपासना के इतिहास में श्रीगणेश का सर्वप्रथम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ के जनजीवन में भगवान् गणपति की उपासना अनादिकाल से चली आ रही है। निगमागम साहित्य में गणपति के विराट् और सर्वाकर्षक रूप रूपायित हुए हैं। भारत के नगरों, गाँवों तथा घरों में गणपतिमूर्तियाँ प्रतिमाएँ तथा चित्र पूजित-अर्चित होते हैं। गणपति स्वतन्त्रता के आराध्य देव हैं। लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सवों के माध्यम से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देश की जनता को 'गणपति वप्पा मोरया' के बुलन्द जयघोष से आवाहित किया था।

गणपति की मूर्ति विघ्नराज के रूप में बृहत्तर भारत के समग्र देशों में आज भी होती है। गणपति का तमिलनाम है 'पिल्लैयर', भोट भाषा में 'सोग्द-दाग', बर्मी में 'महा-पियेन्ने', चीनी भाषा में 'कुआन-शी-तियेन', जापानी में 'काङ्गी-तेन' तथा कम्बोडियन में 'प्राह केनीज'। चीन देश के तान्त्रिक बौद्धधर्म ने विनायक की उपासना अत्यन्त आदर के साथ स्वीकार किया। विनायक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के प्रतिरूप माने जाते हैं। कोबादाइशी नामक विद्वान् ने चीन देशीय बौद्धाचार्यों से दीक्षा ग्रहण कर विनायक का जापान में प्रवेश कराया और स्थानीय शिंगोन सम्प्रदाय जो तान्त्रिकमत है इन्हें अपना लिया।

गणेश, गणपति, विनायक, सुमुख, एकदन्त, गणाधिप, हेरम्ब, लम्बोदर, विकट, धूम्रकेतु, गजानन, विघ्नेश, परशुपाणि, गजास्य, शूर्पकर्ण तथा मूषकध्वज आदि अनेक नाम हैं। इनको परब्रह्म मानकर की जाने वाली उपासना गाणपत-सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है।

सुदृढ़ लोकविश्वास है कि श्रीगणेश का प्रथम पूजन धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति के साथ ही निर्विघ्न कार्य-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। कुछ समय पूर्व यूनेस्को के सर्वेक्षण से पता चला है कि '*मानस*'

सर्वाधिक पठन-पाठन वाला ग्रन्थ है।[1] सन्त तुलसीदास ने स्वयं अपने जीवन-दर्शन का निर्माण किया तथा निगमागम[2] सम्मत रचना में विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय प्रस्तुत कर इच्छा, ज्ञान व क्रिया की त्रिवेणी से अपने कृतित्व को सर्वार्थता तथा समग्रता दी। 'मानस' में तन्त्रशास्त्र का समावेश प्रतिष्ठित है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।[3]

विनायक भैरव हैं। वाणी उनकी महायोगिनी। 'विनायक' अर्थात् 'विनयन' विशिष्टरूप से 'नयन' ('नयति' अर्थात् ढाकर ले जाना) करने वाले, पहुँचाने वाले देवता हैं। इस देवता और उनकी योगिनी शक्ति वाणी से तुलसी प्रार्थना करते हैं : 'जो वर्णों को अर्थ (शब्द वाक्य) तक, अर्थ-संघों को 'रसो' (स्थायी भाव की अनुभूति) तक तथा इस रसानुभूति को छन्दों के साँचे तक तथा इस समस्त छन्दोबद्ध प्रक्रिया को मङ्गलतत्त्वों तक पहुँचाने वाली क्रिया-शक्ति के देवता हैं, उन वाणी-विनायक युग्म की मैं वन्दना करता हूँ।' इस समूची सिसृक्षा-यात्रा को मञ्जिल तक पहुँचाने वाला है 'विनायक' या 'विनयन करने वाला' भैरवतत्त्व। इस यात्रा को वाणी मुखर कर देती है। उसे जगत्-लब्ध करके 'मङ्गल' तत्त्व का बोध प्राप्त करता है।

गणेश का विनायक (विशिष्ट नायक) सम्बोधन भी उनके सेनानायकत्व को बोधित कराता है। गणेश के साथ पार्षदों और पार्षदियों का एक गण रहता है, जिसके अधिपति होने के कारण गणेश विनायक हैं। वस्तुत: यह गण या समुदाय गणेश का अपना गण नहीं, उनके पूज्यपिता रुद्र-शिव का है। रुद्र के इस गण को वैदिक साहित्य में 'रुद्रा:' कहा गया है। परमकारुणिक भगवान् शङ्कर ने उन सभी प्राणियों को अपनी शरण में ले रखा है जिनका आकार-प्रकार विचित्र अथवा विकृत है, जो स्वभाव से उत्पाती हैं, जिनका काम है—लोगों के कामों में विघ्न-बाधाओं को उपस्थित करना। रुद्र के ये गण अथवा अनुचर असंख्य और अनुमेय हैं। ये धरती, सागर, आकाश सर्वत्र पाये जाते हैं। कुछ वृक्षों के ऊपर निवास करते हैं, कुछ भूमि के अन्दर वर्ण तथा आकार में कुछ घास की भाँति भूरे (शष्पिञ्जर) हैं तो कुछ नीलग्रीवा विलोहित तथा जटाधारी (कपर्दिन्)। ये छुरी, बर्छी, धनुष, बाण आदि धारण कर सर्वत्र विचरण करते रहते हैं तथा रोग, शोक, कष्ट आदि को समाज में व्याप्त कर अनेक प्रकार के उपद्रवों का आयोजन करते हैं। कहा गया है कि जिन व्यक्तियों के गण आविष्ट कर लेते हैं, वे मिट्टी के ढेले फोड़ते हैं, तिनके तोड़ते हैं, अंगों में लेख लिखते हैं, दु:स्वप्न देखते हैं—इन कुलक्षणों से सम्पन्न राजपुत्र भी राजपद पाने के योग्य नहीं हैं। सुन्दरी कन्याएँ पतिकामी होने पर भी विवाह से वञ्चित रह जाती हैं। सुलक्षणा स्त्रियाँ पुत्रवती नहीं होती हैं, वणिकों का व्यापार नष्ट हो जाता है, कृषकों की कृषि सफल नहीं होती है—

एतैरधिगतान् इमानि रूपाणि भवन्ति, लोष्टं मृद्नाति। तृणानि छिनत्ति अङ्गेषु लेखान् लिखति। अपस्वप्नं पश्यति। एतै: आविष्टा: राजपुत्रा: लक्षणवन्तोऽपि राज्यं न लभन्ते। कन्या: पतिकामा: लक्षणवत्यो भर्तॄन् न लभन्ते। स्त्रिया: प्रजाकामा: लक्षणवत्य: प्रजां न लभन्ते। वणिजां वाणिज्यपथो विनश्यति। कृषिकाराणां कृषिरल्पफला भवन्ति।[4]

वस्तुत: गणेश की कल्पना आरम्भ में विघ्नेश के रूप में थी और मानव देह पर हाथी का मस्तक का उनका रूप भयावह था, लोग उन्हें भयवश ही पूजते थे। कहते हैं जब बौद्ध धर्म की महायान शाखा का जन्म हुआ, विघ्नेश ज्यों के त्यों उसमें आ विराजे। प्रत्येक अनुष्ठान के आरम्भ में उनकी प्रसन्नता के लिए वे पूजे जाने लगे। धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने उन्हें विघ्नहर बना दिया। विघ्नहर रूप में ही वे हमारे पौराणिक धर्म के साथ रह रहे हैं। गणेश का गजमस्तक स्वरूप ही पूजा पुराणकाल (ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों) से भी पूर्व अथवा गुप्तकाल (400 शती) से भी प्राचीन है, यद्यपि बुद्ध और तीर्थङ्कर महावीर ने गणेश का नाम ग्रहण नहीं किया है।[5]

'गण' शब्द का तात्पर्य—वर्ग, समूह, समुदाय। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, द्वादश आदित्य तथा अश्विद्वय नामक चार प्रसिद्ध गण या वर्गों को मिलाकर 'गणदेवताओं' का मण्डल है।

सबसे लोकप्रिय अन्य गण या समूह 49 मरुतों के सात-सात संख्या वाले सात गणों का है—सप्त सप्त हि मारुता गणा:[6], जिनके निजी नामों का उल्लेख यजुर्वेद में हुआ है। उनका स्वरूप गण के अनुसार ही निर्धारित कहा गया है 'गणेशो हि मरुत:',[7] मरुतो गणानां पतय:[8]। यह स्पष्ट संकेत है कि प्रत्येक मरुद्गण के प्रधान के लिए 'गणपति' की कल्पना विकसित हो चुकी थी। यही तथ्य *यजुर्वेद*[9] के 'रुद्रस्य गाणपत्यम्' में निहित है। 'गणों के गणपति' रूप में ब्रह्मणस्पति का आवाहन *ऋग्वेद* के एक प्रसिद्ध मन्द्ध में मिलता है—**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। (2.31.1)** आगे चलकर रुद्र के अन्तर्गत एकत्र विविध सहचारी देवताओं के लिए उनके अधिपति 'गणपति' की कल्पना स्थिर हुई, जो गणशीर्ष देवता गणेश कहलाया और पुराणों में उसका उसी ब्रह्मणस्पति से तादात्म्य स्वीकृत हुआ। यह रोचक तथ्य है कि *अथर्ववेद*[10] के सूक्त में ब्रह्मणस्पति का दाँत से सम्बन्ध सूचित है; अन्यत्र उसे विघ्नकारक राक्षसों के निवारण से भी जोड़ा गया है।[11] उल्लेखनीय है कि सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के एक 'अलक्ष्मनाशन सूक्त'[12] का देवता ब्रह्मणस्पति है, जबकि अथर्ववेद में इसी विषय के अन्य सूक्त का देवता 'विनायक' है। यह तथ्य वैदिक 'गणपति' परम्परा का उत्तरकालीन समन्वय स्पष्ट करता है। मानव गृह्यसूत्र में चार विनायकों के समूह या गण की शान्तिपूजा का विस्तृत सन्दर्भ विघ्नकारी गणों की मान्यता का सूचक है जो विघ्नेश-विनायक में समाहित हुई। 'आखु' (=चूहा) को रुद्र का प्रिय पशु[13] और अग्नि का रूप कहा गया है,[14] जो आगे चलकर गणेश का वाहन मूषक बना। गृह्यसूत्रों में कृषि की वृद्धि के लिए आखुराज के लिए बलि का निर्देश दिया गया है।[15] चूहे पृथ्वी के भीतर का रस जानने वाले हैं।[16] कालान्तर में विनायक-गणपति की मान्यता अत्यन्त लोकप्रिय हुई और उन्हें ब्रह्मणस्पति की भाँति ज्ञान एवं मङ्गल का अधिष्ठाता माना गया है। प्रो. एन.एन. भट्टाचार्य ने *गणपतितत्त्व* नामक ग्रन्थ का परिचय दिया है।[17] गणेश या गणपति शब्द की प्रवृत्ति के निमित्त को बताते हुए डॉ. भट्टाचार्य का कहना है कि ऋग्वेद[18] में इन्हीं की स्तुति की गई है। ऋग्वेद के रुद्र तथा पौराणिक शिव से समान रूप से गणेश सम्बद्ध हैं।

गण-शब्द रुद्र के अनुचर के लिए भी प्रयुक्त है। रामायण में निर्दिष्ट है—

धनाध्यक्षसमो देवः प्राहो हि वृषभध्वजः।
उमासहायो देवेशो गणैश्च बहुभिर्युतः।।

संख्या-विशेष सेना का परिचायक भी गण-शब्द है—गज-26, रथ-27, अश्व-81 तथा पदाति-135 अर्थात् 270 का समुदाय। इसके स्वामी श्रीगणेश हैं।

'महानिर्वाणतन्त्र' का अभिमत है—

गणपस्तु महेशानि गणदीक्षाप्रवर्त्तकः।

छन्दःशास्त्र में भी यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण्य और सगण—ये आठ गण होते हैं। इनके अधिष्ठातृ देवता होने के कारण भी इन्हें गणेश की संज्ञा दी गयी है।

गणनामक दैत्य पर अधिकार पाने के कारण भी ये 'गणेश' कहे जाते हैं।

अक्षरों को 'गण' कहा जाता है। उनके 'ईश' होने के कारण इन्हें 'गणेश' कहा जाता है। इसीलिए ये 'विद्या-बुद्धि के प्रदाता' कहे जाते हैं। वस्तुतः गणपति का अर्थ—'अक्षरगण के पालक।'[19] यही बृहस्पति का भी तात्पर्य है।

यास्क के निरुक्त में निर्दिष्ट है—

बृहस्पतिर्बृहतः पाता वा पालयिता वा।[20]

साधक के पुरुषार्थ का आरम्भ और अन्त सत्सङ्ग में ही निहित है। सत्सङ्ग शरीर का धर्म नहीं है, बल्कि आत्म-धर्म है। स्वधर्म को अपनाने में सभी साधक सर्वदा स्वतन्त्र हैं। स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। स्वधर्मनिष्ठ होने में किसी प्रकार की पराधीनता तथा असमर्थता नहीं है। 'स्व' का बोध स्वतः प्राप्त है कि समस्त दृश्य एक ही ईकाई है और जिसकी माँग है, वह भी अद्वितीय ही है और जिसमें माँग है, वह 'मैं' तत्त्व भी एक ही है। अब विचार किया जाय कि माँग का अनुभव 'स्व' को यह स्वतः होता है और जब माँग सबल और स्थायी हो जाती है, तब काम का स्वतः नाश हो जाता है। काम का नाश होते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। यह जीवन का सत्य है, स्वरूप से अभिन्नता है। उस अभिन्नता का स्पष्टीकरण सत्सङ्ग से ही अर्थात् गणेश-तत्त्व से ही होता है, जो कि जीवन का सत्य है।

गणपत्यथर्वशीर्ष का उद्घोष है कि 'जो गणेश की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण दोषों से, सम्पूर्ण विघ्नों से, सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है तथा वही सर्वविद् है'—

महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। सर्वदोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति।[21]

इसी उपनिषद् में इनकी पूजा और जप का विधान वर्णित है—

गणादि पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरं। अनुस्वारः परतरः। अर्द्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धम्। एतत्त्वमनुस्वरम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः सन्धानम्। संहिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः। निचृद्गायत्रीछन्दः। गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः।[22]

वस्तुतः गणपति अथर्वशीर्ष भारतीय भाषाओं के अक्षर मौक्तिकों से निर्मित अ–क्ष माला का ऐसा अमृत–सूत्र है जो विविधता में एकता के जीवन–दर्शन को प्रत्यक्ष करता है। गणपति भारतीय एकात्मकता की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या है।

गणेशो वः पायात् प्रणमत गणेशं जगदिदं
गणेशेन त्रातं नम इह गणेशाय महते।
गणेशान्नास्त्यन्यत् त्रिजगति गणेशस्य महिमा
गणेशे मच्चित्तं निवसतु गणेश त्वमव माम्।।

कारक की सभी विभक्तियों का उदाहरण एक ही श्लोक में प्रदर्शित है।

श्री गणेश की अनेक उपनिषदों में भिन्न–भिन्न गायत्रियाँ भी प्राप्त होती है—

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।[23]
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।[24]
तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।[25]

गणेश जी वैदिक देवता हैं, परन्तु इनका नाम वेदों में 'गणेश' न होकर गणपति या 'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेद में 'ब्रह्मणस्पति' के नाम से अनेक सूत्रों में अभिहित किये गये हैं, उन्हीं देवता का नाम पुराणों में 'गणेश' मिलता है। *ऋग्वेद* के द्वितीय मण्डल का यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपति की ही स्तुति में है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत, आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।।[26]

इसमें आप 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। 'ब्रह्मन्' शब्द का अर्थ वाक्, वाणी है—अतः 'ब्रह्मणस्पति' का अर्थ वाक्पति, वाचस्पति अथवा वाणी का स्वामी हुआ। *बृहदारण्यक–उपनिषद्* में 'ब्रह्मणस्पति' का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है—

एष एव उ एव बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः। एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एव पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः।।[27]

बोधायनधर्मसूत्र में गणेश के विषय में विस्तृत विवरण उपलब्ध है तथा वहाँ पर इनके लिए वक्रतुण्ड, एकदन्त, हस्तिमुख, लम्बोदर, स्थूल एवं विघ्न (राज) विशेषण निर्दिष्ट है।[28]

बौधायन गृह्यसूत्र में गणेश की प्रथम अर्चना का विधान विहित है तथा इन्हें सभी कार्यों का सिद्धि-विधायक, धन-ऐश्वर्य और पशुओं को प्रदान करने वाला कहा गया है। इसी स्थल पर उनको विनायक (विशिष्ट नायक), 'भुवनपति', 'भूतानां पतिः' आदि कहा गया है तथा उनके लिए शूर, वीर, उग्र तथा भीम आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। वे वरद तथा उनके साथ 'पार्षदों', 'पार्षदियों' के एक विशाल गण का निर्देश है—

विनायक भूपतये नमो विनायकाय स्वाहा।
विनायकाय भुवनपतये नमो विनायकाय भूतानां पतये नमः।
हस्तिमुखाय स्वाहा, वरदाय स्वाहा। विघ्नपार्षदेभ्यः स्वाहा, विघ्नपार्षदीभ्यः स्वाहा।[29]

तत्त्वदर्शन

सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्त्व ही 'गणपति-तत्त्व' है; क्योंकि 'गणानां पतिः गणपतिः।' 'गण'-शब्द-समूह का वाचक होता है—**गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः।** समूहों का पालन करने वाला परमात्मा को 'गणपति' कहते हैं। देवादिकों के पति को भी 'गणपति' कहते हैं, अथवा 'महत्तत्त्वगणानां पतिः गणपतिः' अथवा निर्गुण-सगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः, अथवा "सर्वविध गणों को सत्ता-स्फूर्ति देने वाला जो परमात्मा है, वही 'गणपति' है।" अभिप्राय यह कि 'आकाशस्तल्लिङ्गात्'[30] इस न्यास से जिसमें ब्रह्मतत्त्व के गुण जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-लीलात्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्वादि पाये जाय, वही 'ब्रह्म' होता है। जैसे आकाश का जगदुत्पत्तिस्थिति-कारणत्व—**'इमानि भूतानि आकाशादेव जायन्ते'**[31] इस श्रुति से जाना जाता है; इसलिए वह भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता है, वैसे ही **'ॐ नमस्ते गणपतये त्वमेव केवलं कर्त्तासि, त्वमेव केवलं भर्तासि, त्वमेव केवलं हर्तासि, त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि' इत्यादि *गणपत्यथर्वशीर्ष* वचन द्वारा 'गणपति'-शब्द से भी ब्रह्म ही निर्दिष्ट होता है।**[32]

गणेशपुराण का अभिमत है—

त्वन्नामबीजं प्रथमं ... ॐकाररूपं श्रुतिमूलभूतम्।
यतो गणानां त्वमसीह ईशो गणेश इत्येव तवास्तु नाम।[33]

अर्थात् आपका नाम वेदों का मूलभूत ओङ्काररूप है तथा आप गणों के स्वामी हैं।

गणेश शब्द का विद्वानों ने निम्नलिखित प्रकार से भी अर्थ किया है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचक:।
तयोरीशं परब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्।।[34]

आप गणपति को नमस्कार है। तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो। तुम्हीं केवल कर्त्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्त्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्त्ता हो। तुम्हीं केवल यह समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो।[35]

गणेशोत्तरतापनी में वर्णित है—

ॐ गणेशो वै ब्रह्मा तद् विद्यात्। यदिदं किं च सर्वं भूतं भव्यं जायमान च तत् सर्वमित्यमित्याचक्षते।[36]

उपर्युक्त विवरणों से यह प्रमाणित है कि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही निर्गुण तथा विघ्नविनाशकत्वादिगुणगणविशिष्ट गजवदनादिशरीरधारीमूर्त्तिमान् रूप में गणेश हैं।

महाकवि कालिदास गणेशाविर्भाव का वर्णन करते हुए कहा है कि "जैसा पूर्णिमा का चन्द्रमा शान्त तरङ्ग वाले क्षीरसागर को ऐसा क्षुब्ध कर देता है कि उसमें गर्जन के साथ गगन चुम्बिनी ऊर्मिमालाएँ उठने लगती हैं, उसी प्रकार जो पूर्णत: प्रकाशमान हो एक बार निस्तरङ्ग चिदाकाश में प्रणव के नादतत्त्व को फैलाकर बिन्दुतत्त्व की वक्रलहरों को उद्वेलित कर देता है, जो शब्द-ब्रह्म का आदि स्पन्दनरूप है; ॐकार जिसका शुण्डदण्ड है तथा जो सम्पूर्ण क्रियाओं का द्रष्टा (साक्षी) है, वह शक्तिनन्दन गजमुख गणेश हठात् आप सबके पाप-तापों का शमन करें।[37]

गणपति एक ही साथ सगुण ईश्वर भी हैं और निर्गुण ब्रह्म भी।

आर्यों के प्रत्येक मङ्गल-कार्य के आरम्भ में भगवान् गणपति की पूजा होती है—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजाम:।।
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धुरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजाम:।।[38]

गणपति उपनिषद् के प्रथमखण्ड में गणेश के सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। गणेश ही एक प्रत्यक्ष तत्त्व हैं। वे ही एकमात्र कर्त्ता, धर्ता तथा हर्त्ता हैं। वे ही परब्रह्म हैं। वे ही नित्य आत्मतत्त्व हैं। वे वाङ्मय चिन्मय तथा आनन्दमय हैं। संसार उन्हीं में तथा उन्हीं के द्वारा अवस्थित है तथा अन्त में उन्हीं में विलीन हो जाता है।[39]

निर्गुण निराकार परब्रह्म गणेश की यह केवल एकाक्षर नाम-स्वरूप उपासना है। यहाँ गणेश पद से पार्वती-शिवसम्भूत गणपति की उपासना नहीं है। पार्वती-शिव-नन्दन गजानन परमात्मा भगवान् गणेश के अवतार हैं। भगवान् गणेश परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निर्गुण, निराकार तथा सारे विश्व में व्याप्त है—

जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचकः।
तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्यं नमो नमः।।[40]

सन्त ज्ञानेश्वर ने *श्रीमद्भगवद्गीता* की टीका *ज्ञानेश्वरी* में श्रीगणेश की स्तुति करते हुए कहा है—"हे ओङ्कारस्वरूप परमात्मा! वेद ही आपका प्रतिपादन कर सकते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप ऐसे आत्मस्वरूप हैं, जिनका ज्ञान केवल स्वानुभव से ही हो सकता है। मैं आप का जय-जयकार करता हूँ।"[41]

गणेश के स्वरूप का रहस्य अद्भुत है। पिता—'शिव' हैं। 'शिव' से तात्पर्य है—कल्याण। पिता कल्याण है तथा पुत्र विघ्नान्तक एवं कल्याण का उपस्थापक इसका रहस्यार्थ यह है कि शिवतत्त्व की प्राप्ति के पश्चात् साधक के साधन-मार्ग की सभी बाधाएँ खुद ही नष्ट हो जायेगी तथा विघ्न-बाधाओं के दूर होते ही साधक को अनन्त ऋद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी। शिवतत्त्व को प्राप्त करके ही माया-बन्धन-विघ्न का महाध्वंसरूप गणेश का प्रादुर्भाव होगा।

शिवतत्त्व की प्राप्ति के बिना माया तथा प्रपञ्च—ये बन्धन विघ्न से मुक्ति, मङ्गल-प्राप्ति तथा साधना में सिद्धि-प्राप्ति—ये असम्भव है, अस्तु बिना पिता के पुत्र का जन्म असम्भव है।

पार्वती गणेश की जननी है। पार्वती-पर्ववती। पर्व=इच्छा-ज्ञान-क्रिया=त्रिपर्व। इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप पर्वत्रय का रहस्यार्थ यह है कि पर्वत्रय में सामरस्य की प्रतिमूर्ति पार्वती हैं। पार्वतीजी की तरह साधकों के भी इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप पर्वत्रय में सामरस्य की प्रतिमूर्ति पार्वती हैं। पार्वतीजी की तरह साधकों के भी इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप पर्वत्रय में सामरस्य की स्थिति आने पर (आध्यात्मिक जगत् के सभी मायिक बन्धरूपी समस्त विघ्न-बाधाओं के ध्वंसरूप) गणेश का जन्म होगा। अर्थात् पर्वत्रय में सामरस्य आने पर समस्त-विघ्न-बाधाएँ विनष्ट हो जायेंगी। (पार्वतीजी द्वारा गणेश के जन्म का आध्यात्मिक रहस्य यही है।)

गणेशजी की पत्नियों के नाम हैं—(1) ऋद्धि-सिद्धि एवं (2) बुद्धि। इसका रहस्य यह है कि साधना-क्षेत्र में शिवत्व की प्राप्ति के अनन्तर विघ्नों के नाशक (गणेश) बनने की क्षमता आ जाती है तथा सभी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ साधक के लिए स्वपत्निवत् स्ववशवर्तिनी हो जाती हैं। गणेशजी की पत्नियाँ विश्वरूप की कन्याएँ हैं। इसका रहस्यार्थ निम्न हैं—गणेश विश्व की समस्त नामरूपोत्पन्न मायात्मिका मोहिका शक्तियों के स्वामी हैं अर्थात् साधक जब तक नाम-रूपात्मकजगत् एवं उसकी मायात्मिका शक्तियों पर अधिकार नहीं कर लेता, तब तक वह 'ऋद्धि-सिद्धि-बुद्धि' का स्वामी तथा 'क्षेम' और 'लाभ' का पिता (स्वामी) नहीं बन सकता।

गणेश के पुत्रों के नाम हैं—'क्षेम' एवं 'लाभ'। इसका रहस्य यह है कि साधना-क्षेत्र में सनातन क्षेम एवं सनातन लाभ प्राप्त करने के लिए गणेश अर्थात् शिवपुत्र (शिवत्व-प्राप्त) बनना ही पड़ेगा, अन्यथा 'क्षेम' एवं 'लाभ' की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

गणेश के भ्राता षडानन है जो देवताओं के सुरक्षा-प्रहरी हैं। देवताओं में षडानन से (5+1) परे जाने की क्षमता नहीं, किन्तु गणेश षडानन से परे हैं। वे देवों के सेनापति (भौतिक शक्ति के संरक्षक-प्रहरी) नहीं हैं बल्कि उनके अग्रगण्य हैं।

विनायकरहस्य में गणपति के अनेक स्वरूपों का वर्णन प्राप्त होता है। गणेश का प्रथम स्वरूप गुहाहितब्रह्म रूप में वर्णित हैं—

गुहायां निहितं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम्।
सत्यं तु सगुणं ब्रह्म त्वं पदार्थमयं स्मृतम्।
ज्ञानं तु निर्गुणं ब्रह्म तत्पदार्थमयं स्मृतम्।
स्वस्वरूपमन्ताख्यमसिरूपमिति स्मृतम्।
एवं तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मदेवे गुहाहितम्।।[42]

गणेश का सगुण-निर्गुण दोनों ब्रह्मरूप ऐक्य रूप में वर्णित हैं—

नानाभावधारकं तु सगुणं तद् गकारकम्।
नानाभावविहीनं तन्निर्गुणं तण्णकारकम्।।
एवं द्विभावसंयुक्तम् ईश्वराख्यं द्वयोरपि।
स्वस्वरूपं परं ब्रह्म गणेशश्चेति कथ्यते।।[43]

गजाननस्वरूप भी सगुण-निर्गुण का ऐक्यरूप ही प्रतिपादित करता है—

तस्यैव मस्तकं प्रोक्तं निर्गुणं गजवाचकम्।
कण्ठाधः सगुणं ब्रह्म तस्यैव नरवाचकम्।।
द्वयोरभेदभावे तु गजाननस्वरूपकम्।।[44]

गजाननस्वरूप 'तत्त्वमसि' वेदान्तदर्शन के महावाक्य-रूप में भी निर्दिष्ट है—

गजाननस्वरूपं तु महावाक्यस्वरूपकम्।
कण्ठाधः त्वं पदं प्रोक्तं नराकारं जगन्मयम्।
कण्ठादूर्ध्वं तत्पदं स्याद् गजाकारं तु निर्गुणम्।।
द्वयोरभेदभावे असिपूर्वकमकूबरम्।
प्रत्यक्षं तत्त्वमस्याख्यं ब्रह्म गाणपतं वरम्।।[45]

माया को सत्ता प्रदान करने के कारण गजानन नाम निर्वचन निम्नवत् है—

माया गजेति कथिता माया सा जडरूपिणी।
सत्ताप्रदानान्मायाः प्राणदायक उच्यते।।
निर्गुणस्तेन वेदेषु गजानन इति स्मृतः।।[46]

गणपति को पत्नीहीन कहते हुए कहा गया है कि दीपक में जैसे वर्त्तिका और तेल दो शक्ति रहती है वैसे ही गणपति की सिद्धि-बुद्धि दो शक्तियाँ हैं। मायारूप सिद्धि-बुद्धि के साथ गणपति जगत् की सृष्टि करते हैं। सृष्टि के अनन्तर गणेश शक्तिविहीन सृष्टिव्यापाररहित शुद्धब्रह्मरूप से विराजते हैं। इसी अवस्था को पत्नीहीन रूप में कहा गया है—

मायायोगेन सृष्ट्वा तान् ततस्साक्षी बभूव ह।।
भुक्तं भोगां तु तां मायां त्यक्त्वा सत्यस्वरूपिणीम्।
महिम्नि संस्थितोऽभूच्च सा माया जडरूपताम्।।
सम्प्राप्य बहुरूपासौ बभूव विश्वरूपिणी।
अतोऽयं पत्नीहीनेति कथ्यते योगपारगैः।।[47]

गाणपतसिद्धान्त का वर्णन करते हुए बताया गया है—

गणेशाद्वैतं गाणेशमितिवेदे द्विधा स्मृतम्।
सर्वसाक्षीति यः प्रोक्तो मायाचिद्योगरूपवान्।।
स एव गणराजस्स्यात् पञ्चमश्चेति कथ्यते।
मायायोगयुतश्चापि मायोपाधिविवर्जितः।।
निरूपाधिक एवायं निर्गुणात्मस्वरूपवान्।
निर्गुणं सगुणञ्चापि प्राहुरेनं तु गाणपाः।।
पञ्चमाच्च वरं किञ्चिनाङ्गीकुर्वन्ति निश्चितम्।
ईश्वरस्य लयोत्पत्तिमङ्गीकुर्वन्ति गाणपाः।।
चतुर्विधजगद्रूपा माया शान्तिं च पञ्चमे।
प्राप्नोति प्रलये सृष्टौ पुनर्भवति पूर्ववत्।
भिन्नाभिन्नस्वरूपेण माया तिष्ठति पञ्चमे।
एवं ब्रुवन्ति गाणेशा वैदिका वेदमार्गतः।।
गाणेशाद्वैतमार्गस्य सिद्धान्तमपि वो ब्रुवे।
अनादौ संस्थितं ब्रह्म महिम्नि स्वस्वरूपकम्।।
स्वशक्त्या द्विविधं जातं तदेव खेलनाय च।
बिन्दुरूपा महामाया मूलप्रकृतिरीरिता।।
गुणत्रयशान्तिधरा संस्थिता निरूपाधिवत्।
सर्वकारा महामाया निराकारस्तु पुरुषः।।
आश्रित्य पुरुषं संस्था जाता सा प्रकृतिः परा।

ब्रह्मणः प्रकृतिर्जाता तथायं पुरुषोऽपि च।।
सूर्याच्च जलसूर्यस्तु तथा जातस्तथैव च।
व्योमसूर्योऽपि सञ्जातस्तद्वच्चायं बभूव च।।
प्रकृतेर्योगसंयुक्तं ब्रह्मैव सगुणं स्मृतम्।
सगुणत्वस्यागमनान्निर्गुणत्वमुपागतम्।
निगमान्निर्गुणत्वस्य निर्गुणत्वं लयं व्रजेत्।
गुणत्वं निर्गुणत्वञ्च साक्षाद् ब्रह्मणि कल्पितम्।।
गुणानिर्गुणभावाभ्यां वर्णितन्तु महिम्निगम्।
साक्षाद् ब्रह्मेति कथितं वेदेषूपनिषत्सु च।।
जगज्जीवेश्वराद्याश्च संभूतास्सगुणात्प्रभो।
भूम्यान्तु पतितस्यैव भूमिरेवावलम्बनम्।।
मायाबन्धयुतस्यैव मायाबन्धनिवृत्तये।
मायायोगयुतं ब्रह्म सामवलम्बनं स्मृतम्।।
पञ्चमावलम्बनेन चतुर्विधजगन्मयी।
नश्येन्माया निर्गुणावलम्बनेन च पञ्चमी।।
मूलमाया विनश्येच्च ब्रह्मत्वं प्राप्नुयात्ततः।
त्रिविधं ब्रह्म प्राहुस्ते गणेशाद्वैतमार्गिणः।।
स्वानन्दं परमं तेषां सिद्धान्तो नात्र संशयः।
गणेशनाम्ना तद् ब्रह्म वदन्त्येव च चान्यथा।।
उपासने द्वयोर्भेदे नास्ति वेदप्रमाणतः।
स्वानन्दभवनं चेति स्थितिं ते पञ्चमीं वराम्।।
चिन्तामणिद्वीपमिति तुरीयं प्रवदन्त्युत।
पञ्चचित्तवृत्तिमयी महाबुद्धिरिति स्मृता।।
चित्तहर्षशोकदात्री सिद्धिरित्यभिधीयते।
सिद्धिबुद्धिमहामाये गणेशस्य पतिव्रते।।
पञ्चमत्वं गणेशस्य शुद्धाद्वैते तु सम्मतम्।
ईशत्पञ्चापि ब्रह्मत्वं गणेशस्य श्रुतौ स्मृतम्।।[48]

'*जपसूत्रम्*' में गणपति तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि नादबिन्दु-कलात्मा है, प्रणवादि बीज-मन्त्र जिनका शरीर है, वाक्चतुष्टय जिनके चार बाहु हैं, उन गणपति का स्मरण करता हूँ। वे शङ्ख द्वारा

वैखरी, गदा द्वारा मध्यमा, सुदर्शन चक्र द्वारा पश्यन्ती एवं पद्म के द्वारा परावाक् का भरण कर रहे हैं। वे रहस्यविग्रह (Mystic figure) भगवान् एकदन्त अपने उदग्र दन्त द्वारा व्यामोह का विदारण किया करते हैं। मूषक उनका वाहन है, वे हमारी रक्षा करें।[49]

उनका वाहन मूषिक अखिलात्मा विश्वरूप है, उस मूषक के शुक्ल और कृष्ण दो रूप हैं। वे निखिलभूतों के अन्त:कुहर में प्रविष्ट होकर समस्त दुष्कृत्यों का (सब कुछ का) 'कृन्तन' अर्थात् छेदन कर रहे हैं एवं रात्रि और दिवा (कृष्ण और शुक्ल) इन दो रूपों में चराचर सर्वभूतों के आयु के मूल को काट रहे हैं।[50]

प्राणियों के नासाविवरचारी व्यस्त और विषम जो दो वायु हैं—प्राण और अपान—उन दोनों को विशेष भाव से मूषक-वर का रूप समझें अर्थात् इतस्तत: विक्षिप्त भाव से नासिका-रूप छिद्र में जो प्राण और अपान वायु एक बार प्रविष्ट हो रहा है और फिर बाहर आ रहा है, वही मानों मूषक का प्रकट रूप है, क्योंकि इसी के द्वारा समस्त प्राणियों की आयु अज्ञात-रूप से क्षय व नाश को प्राप्त हो रही है।[51]

प्राण संयम और मन:संयम के द्वारा इस व्यस्त और विषम वायुद्वय की समास-समता बनाकर, उनकी जो स्थिर सन्धि है, उसमें समारोहण करना होगा। जो नाद-बिन्दु-कलात्मा ॐकार हैं, वे मातृकागण-वाचस्पति स्वयं गणेश हैं अर्थात् गणेश ही ॐकार की प्रकट मूर्ति हैं। प्राण, मन के संयमन द्वारा व्यासविषमता का परिहार करके समास-समता में ॐकार की शान्त स्वरूप में स्थिति—इसे ही समावृत्ति समझें।इस प्रकार की समावृत्ति प्रभूत श्रेयोलाभ का हेतु है।[52]

श्रीगणपति की मूर्ति बहुत रहस्यमय है, अस्तु यहाँ प्रथमत: उनके अङ्ग का, पादादिमूर्धान्त सकल अङ्गों का तात्पर्य समझने का यत्न हो रहा है।

श्रीगणेश हैं ज्ञान-विज्ञान के आदि प्रवर्त्तक। 'स्फार' या नादमय ब्रह्मसूक्त या वेद गणपति का मुख है। प्रमिति या प्रकृष्ट ज्ञानरूप 'रति' या शब्द उनका दन्त है। सम्यक् रूप में निष्पन्न उद्गीथ उन का शुण्ड है। परा तथा अपरा रूप दो विद्याएँ उनके दो नेत्र हैं। दोनों विद्याओं के विशेष ज्ञान के फलस्वरूप तमिस्रा या अज्ञानान्धकार के हट जाने से उनका भाल विशद या उज्ज्वल है। विज्ञानभाति से ललाट देश समुज्ज्वल है, प्रतिभा की छटा में भास्वर है। उनका वक्षोदेश या हृदयदेश ही मन्त्र है। यति तथा तति या यन्त्र तथा तन्त्र में कुशलता ही उनके दोनों पार्श्वदेश हैं, सुतरां मध्यस्थल में मन्त्र तथा दोनों पार्श्वों में यन्त्र और तन्त्र इस रूप में वे मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र की सम्मिलित मूर्ति हैं। उनके 'दो' अर्थात् चारों भुजाएँ हैं—ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग। जिस प्रकार 'मन्त्र' का उनका मर्मस्थल है, उसी भाँति मन्त्र की ठीक-ठीक प्रयोगविधि जानने के लिए उनकी चार भुजाएँ मन्त्र के चार अपरिहार्य अङ्गों की परिचायक हैं। इन चारों भुजाओं में वे धारण करते हैं—मात्रा, पाद, कला तथा काष्ठा। छन्दों रूप हस्त में उनकी मात्रा विनियोग रूप हस्त में पाद, ऋषिरूप हस्त में कला एवं देवतारूप हस्त में काष्ठा है। इस प्रकार उनके चार हाथ मात्रादि द्वारा समाढ्य या समृद्ध हैं। उनका शरीर सकल यज्ञमय है, वे 'सकलमखतनु' हैं। गीता द्वारा प्रतिपादित द्रव्य यज्ञ से आरम्भ कर

ब्रह्मयज्ञ–पर्यन्त द्वादश प्रकार के यज्ञ ही उनका शरीर–निर्माण करते हैं। उनकी देह का सिन्दूर वर्णन इस यज्ञाग्नि के वर्ण–रक्तवर्ण का निदर्शन करता है। उनके चरणयुगल सिद्धि तथा ऋद्धि हैं। अभ्युदय तथा नि:श्रेयस सभी उनके दोनों चरणों पर अवलम्बित हैं, ऐसे श्रीगणेश को प्रणाम है।[53]

गणपति की इस रहस्यमूर्ति की अन्य प्रकार से भावना करें। जैसे मदोन्मत्त गजराज वन में विचरण करते समय वृक्ष–लतादि निर्मित दुर्गम व्यूह को खेल–खेल में विदीर्ण करके आगे बढ़ता है और रणक्षेत्र में शत्रुरचित कठिन सुरक्षा व्यूह को भी भेदन करने में समर्थ है। उसी भाँति जीवन के अन्तर्बहि: निखिल विघ्नबाधा जिस समय व्यूह–रचना करके अपने दुर्भेद्य कौटिल्यपाश में जकड़कर उसकी अग्रगति को व्याहत करते हैं, तब दन्ति–यूथपति के सदृश ही अपने (असीम शौर्य समन्वित) वक्त्र से (एक परमाद्भुत) दन्त विस्तार करके वे उस व्यूह को समूह विनष्ट करते हैं। परमरहस्यमय दन्त क्या है? ऋतचरित वाक्–काय मन का जो ऋजु, सत्य आचरण है वही अर्थात् वागादि कुटिल (जिह्म) अनृत अध्व का परिहार करके ऋजु, ऋत जो अध्व है, उसका अनुसरण करने में जिस श्रेयोवीर्य द्वारा समर्थ होते हैं, वही है श्रीगणपति का दन्त। सकल साधना के मूल में यह ऋतान्वय, यह सत्यनिष्ठा है। ठीक, दन्त कितने हैं? दन्त एक ही है—व्यवसायात्मिका बुद्धि की तरह (**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन,** *गीता, 2/41)* ऋतान्वय या ऋतचरित भी एक ही होता है। (A Straight, unswerving singleness of purpose and pursuit) साधन में ऐकान्तिक अचल निष्ठा आवश्यक है।

अशुभ या अन्तराय मुख्यरूप से दो रूपों में आकर उपस्थित होतेहैं। व्यूह तथा व्यामोह। प्रथम भाव से न होने पर भी दुर्भेद्य है। दूसरा प्रसारी एवं आततायी पुरुभुज के समान केवल अपनी बाहें फैलाता है। यह दुर्निवार है। इसकी बाहें अन्तहीन है तथा वे सचराचर विविध व्यसन के आकार में जीवन को शृङ्खलित करती हैं। फिर बचने का उपाय क्या होगा? श्रीविनायक अपने ॐकाररूपी शुण्ड द्वारा इस महोपद्रव को शीघ्र दूर करते हैं, अर्थात् प्रणवादि का श्रद्धापूर्वक जप ही मुख्य साधन है, क्योंकि उसके द्वारा ही इस यन्त्र का स्पन्दनगत वैरूप्य या प्रतिकूलता तिरोहित होने पर ऋत एवं छन्द के साथ अनुरूपता साधित होते हैं।

तत्पश्चात् श्रीगणेश के दिव्य कलेवर में अरुणाक्तिम्–रुचि क्या है? नि:स्पन्द परमतत्त्व में नादरूप जो मूलस्पन्द है, उसका ही जो समन्तात्–स्फुरण है, वही उस दिव्य कलेवर में रक्तिम अङ्गराग है। वाच्य वाचकमय यह जो चराचर जगत् है, इसके जीवन का प्रथम प्रतिस्पन्द इस अरुण रक्तिमा में ही है। विश्वप्राण का 'रस', जीवन का 'रङ्ग'–पादप में शीत अपगत होने पर विपुल प्राण–हिल्लोल से उद्गत नवकिसलयमय मञ्जरी की भाँति लाल है।

विश्व की प्राणधारा में, जीवन चाञ्चल्य में रहकर भी वे इसके ऊपर नित्य–शुद्ध–बुद्ध–स्वरूप में विराजते हैं और अपनी उस नित्य क्षोभहीन (सुतरां नि:स्पन्द) सत्ता में प्रतिष्ठित रहते हुए ही वे निखिल

स्पन्दात्मक प्रपञ्च में 'अवगाहन' करते हैं, वर्णहीन होकर भी विश्ववर्णालि बने हुए हैं। वह 'अघटनघटन' है उनके ललाट का 'स्वेद' तथा वह अचिन्त्य घटन बिन्दुरूप में अभिव्यक्त होता है।

गणपति चार हस्त है मात्रा चतुष्टय—मात्रा, अर्धमात्रा, पूर्णमात्रा और अमात्रा। उनके दो नेत्र हैं—'पश्यत' तथा 'तूर्य'। प्रथम के द्वारा निखिल तत्त्व, वस्तु एवं सम्बन्ध के 'दर्शन' करते हैं, द्वितीय के द्वारा सभी त्रिपुटियों के मूल में जो परमाव्यक्त सत्ता है, उसमें ही साक्षात् अपरोक्षानुभूति रूप में अच्युतप्रतिष्ठ रहते हैं। ऐसे रहस्यवपु धारण करने वाले हैं श्रीगणपति।[54]

इसी क्रम में श्रीगणपति के प्रति अङ्ग की क्रिया निरूपित है। प्रथमत: अपने शुण्ड के शौर्य द्वारा पूर्वकथित समास-समता की सम्यक् भाव से रक्षा करते हैं। तदनन्तर, अपने दन्त के वीर्य द्वारा व्यास में अर्थात् विच्छिन्न भाव के बीच अन्वित या युक्त जो विषमता है, उसका हरण या नाश करते हैं। शुण्डशौर्य द्वारा जिस प्रकार समता का रक्षण है, उसी तरह दन्तवीर्य द्वारा विषमता का हरण है। अनुकूलता का पोषण तथा प्रतिकूलता का विहरण इन दोनों अङ्गों द्वारा सम्पादित होता है।

मात्र, इन दो क्रियाओं से उनका कर्त्तव्य समाप्त नहीं होता—वे अपने मौलि या मस्तक के प्रसन्न धाम या ज्योति:प्रसाद द्वारा साधक को प्रभावित करते हैं उनकी साधना की सरणि को आलोकोद्भासित कर रखते हैं, जब तक कि ब्रह्माकारावृत्ति का उदय नहीं होता। यही उनके मौलि या मस्तक कार्य हैं।

योगशास्त्र में वर्णित सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात द्विविध समाधि उनके नयन-युगल में स्थान पाती है अर्थात् उनके दोनों नेत्रों के मध्य समाधि द्विविध रूप में निहित है। स्पष्ट है उनके उसी नयन-प्रसाद या दृष्टि प्रसाद से साधक का द्विविध समाधिलाभ सम्भव होता है।

एतावता श्रीगणेश के सभी अवयवों के कार्यावलोकन से प्रमाणित है कि ये समावृत्ति की ही प्रकट मूर्त्ति है।[55]

मन्त्र-विमर्श

मन्त्रशास्त्र के अन्तर्गत मातृका विषय भी आता है। अतएव वर्णों के अनुसार 51 'गणेश' एवं 'गणेश-शक्ति' का स्वरूप निम्नवत् है—

अकारादि-क्षकारान्त महा-सरस्वती-मय गणेश एवं गणेश-शक्ति

वर्ण	गणेश-रूप	गणेश-शक्ति
अ	विघ्नेश (विघ्नेश्वर)	ह्री
आ	विघ्न-राज	श्री
इ	विनायक	पुष्टि
ई	शिवोत्तम	शान्ति

उ	विघ्न–हद् (कृत्)	क्षान्ति
ऊ	विघ्न–कर्त्ता (हर्ता)	सरस्वती
ऋ	गण (गण–नायक)	स्वाहा
ॠ	एक–दन्त	मेधा
ऌ	द्वि–दन्त, सुदन्त	कान्ति
ॡ	गज–वक्त्र	कामिनी
ए	निरञ्जन	मोहिनी
ऐ	कपर्दी	नटी
ओ	दीर्घ–जिह्व (वक्त्र)	पार्वती
औ	शङ्कु–कर्ण	ज्वालिनी (ज्वा.)
अं	वृषभ (वृष)–ध्वज	नन्दा
अः	गण (नाथ)–नायक	सुयशा (सुरेशी)
क	गजेन्द्र	काम–रूपिणी
ख	सूर्य (शूर्प)–कर्ण	उग्रा (उमा)
ग	त्रिलोचन	तेजोवती
घ	लम्बोदर	सत्या
ङ	मदानन्द (नाद)	विघ्नेशानी (विघ्नेशी)
च	चतुर्मूर्ति	सु–रूपिणी
छ	सदा–शिव	कामदा
ज	अमोघ (आमोद)	मद–जिह्वा
झ	दुर्मुख	भूमि
ञ	सुमुख	भौतिकी
ट	प्रमोदक (प्रमोद)	सिता
ठ	एक–पद	रमा
ड	द्वि–जिह्व	महिषी
ढ	सूर (शूर)	भञ्जिनी
ण	वीर	विकर्णपा
त	शिवा–मुख (षण्मुख)	भृकुटि
थ	वरद	लज्जा
द	वामदेव	दीर्घ–घोणा
ध	वक्र–तुण्ड	धनुर्द्धरा

न	द्विरण्डक (द्विरण्ड)	यामिनी
प	सेनानी	रात्रि
फ	ग्रामणी	कामान्धा
ब	मत्त	शशि-प्रभा
भ	विमत्त (विमल)	लोलाक्षी (लोललोचना)
म	मत्त-वाहन	चञ्चला
य	जटी	दीप्ति
र	मुण्डी	शुभगा
ल	खड्गी	दुर्भगा
व	वरेण्य	शिवा
श	वृष-केतन	गर्भा (भर्गा)
ष	भक्ष्य-प्रिय	भगिनी
स	गणेश	भोगिनी
ह	मेघ-नायक (नाद)	सुभगा
ळ	व्यापी (गणप)	काल-रात्रि
क्ष	गणेश्वर	कालिका[56]

इस संदर्भ में 'गणपति' शब्द पर भी तान्त्रिक दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है। 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त अक्षर अमृतमय और निर्मल हैं। अक्षरों के अपने रंग हैं, इसलिए उन्हें वर्ण कहते हैं। आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित धर्मचन्द्र से क्षरित होने वाले अमृत-बिन्दु ही मूलाधार आदि चक्रों के दलों में आकर वर्णों के रूप में परिणत हो जाते हैं।[57] प्रत्येक वर्ण, पञ्चभूतों, त्रिदेवों, प्राणादि से संघटित होते हैं, अत: उसकी वर्णरूपता स्वत: सिद्ध है। *सनत्कुमारसंहिता* के अनुसार अकारादि स्वरों का वर्ण धूम्र है। 'क' से लेकर 'ठ' पर्यन्त सभी वर्ण सिन्दूराभ हैं। 'ड' से 'फ' पर्यन्त दस वर्ण 'गौर' हैं तथा 'ब' आदि पाँच वर्ण अरुण एवं 'ल' कारादि पाँच स्वर्णवर्ण के हैं। 'ह' और 'क्ष' तडित् वर्ण हैं। *मातृका-विवेक* के अनुसार प्रत्येक अक्षर के भिन्न-भिन्न वर्ण हैं—

यादयो नव पीता: स्यु: क्षकारस्त्वरुणो मत:।
अकारं सर्वदैवत्यं रक्तं सर्ववशंकरम्।।[58]

कामधेनु-तन्त्रानुसार स्वर-वर्णादि 50 वर्ण मातृकाएँ 50 युवतियाँ हैं, जो विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। युवतियों का यह गण ब्रह्मरूप गणेश ही हैं, इनसे परे न कोई विद्या है और न कोई मन्त्र।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्।।

इन 52 मातृकाओं को 'लघुषोढान्यास' के अन्तर्गत शक्ति सहित गणेशजी बताया गया है। सुधीजन इसको देख सकते हैं।[59]

तन्त्रशास्त्र एक प्रायोगिक मनोविज्ञान है। विभिन्न युगों में शास्त्र फल भेद से ध्यान-भेद विहित है। नाना फल-भेद की प्राप्ति के लिए गणेश के भिन्न-भिन्न ध्यानों का स्वरूप अधोलिखित है—गणेश जी ने कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि इन चारों युगों में अलग-अलग रूपों में जन्म लेकर कार्य को सिद्ध किया है।

कृत युग में सिंहस्थ, विनायक तथा दशबाहु से युक्त है, त्रेता युग में उनका वाहन मयूर है तथा षड् बाहुवाले हैं, द्वापर युग में गजानन हैं, दो भुजाओं वाले हैं तथा लालवस्त्र धारण करने वाले हैं, कलियुग में दो भुजाओं वाले, श्वेतवस्त्र धारण करने वाले तथा सभी कामनाओं को पूरा करने वाले हैं—

ध्यायेत्सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम्।
द्वापारे तु गजाननं युगभुजं रक्ताम्बरागं विभुम्।
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा।।
पीतं स्मरेत् स्तम्भनकार्य एनं वश्याय मन्त्रीं ह्यरूणं स्मरेत् तम्।
कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटने धूमनिभं स्मरेत् तम्।।
स्मरेद् धनार्थी हरिवर्णमेतं मुक्तौ च शुक्लं मनुवित् स्मरेत् तम्।।
एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायञ्जपन् सिद्धियुतो भवेत् सः।।

'मन्त्र-साधक स्तम्भन-कार्य में गणेशजी के पीत कान्तिवाले स्वरूप का ध्यान करें, वशीकरण के लिए उनके अरुण कान्तिमय स्वरूप का चिन्तन करे। मारणकर्म में गणेशजी की कृष्ण-कान्ति का ध्यान करे तथा उच्चाटन कर्म में उनके धूम्र वर्णवाले स्वरूप का स्मरण करे। आकर्षण-कर्म में बन्धूक पुष्प (दुपहरिया के फूल) आदि के समान लाल वर्ण वाले गणेश का ध्यान करे; बल के लिए तथा पुष्टिकार्य में भी वैसे ही ध्यान का विधान है। धनार्थी पुरुष इनके हरितवर्ण तथा मोक्षकामी मन्त्रवेत्ता शुक्लवर्णवाले स्वरूप का चिन्तन करे। इस प्रकार तीनों समय गणपति का ध्यान और जप करने वाला साधकसिद्धि प्राप्त कर लेता है।'

गणपतितत्त्व नामक ग्रन्थ की प्राचीन मातृका जावा से प्राप्त हुई थी जिसका परिष्कृत संस्करण डॉ. सुदर्शना देवी सिंहल ने तैयार किया था, इस ग्रन्थ में कुलकुण्डलिनी और षटचक्रों का यहाँ कायसाधन में उपयोग निर्दिष्ट है। षडङ्गयोग के साथ निष्कल से नाद की, नाद से बिन्दु की उत्पत्ति, मन्त्रों तथा बीजों आदि का विवेचन है।[60]

महाकालसंहिता के गुह्यकालीखण्ड में काली की उपासना क्रम में आवरण देवताओं के अर्चन के अवसर पर अग्निकोण में गणेश के पूजन-विधान निम्नक्रम से निर्दिष्ट हैं—

दशाक्षरो महामन्त्रो गणेशस्यायमीरितः।
महागणपतिदशाक्षरमन्त्रस्य पार्वती।।
वीतहव्यऋषिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्द उदीर्यते।
महागणपतिश्चापि देवता परिकीर्तिता।।
अमाबीजं तु बीजं स्यादावेशः शक्तिरुच्यते।
सोमः कीलकमुद्दिष्टं नियोगो विघ्नशान्तये।।
अप्सरोऽन्वितमात्सर्यवैश्वदेवर्षभान्वितैः।
प्रयाजैः सभयायुक्तैः षडङ्गद्वयमाचरेत्।।[61]

यह गणेश का दश अक्षरों वाला महामन्त्र कहा गया है। हे पार्वती! इस महागणपति दशाक्षर मन्त्र के ऋषि वीतहव्य कहे गये हैं। छन्द पङ्क्ति कहा जाता है। देवता महागणपति कहे गये हैं। अमा अर्थात् ब्लूं बीज और आवेश अर्थात् ग्लैं शक्ति कही जाती है। सोम अर्थात् ग्लौं कीलक कहा गया है। इसका विनियोग विघ्न की शान्ति के लिए होता है। अप्सरः मात्सर्य वैश्वदेव ऋषभ प्रयाज और भय बीजों के द्वारा दोनो षडङ्गन्यास करना चाहिए।

न्यास का स्वरूप इस प्रकार है—

(क) 1–गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। 2–गीं तर्जनीभ्यां नमः। 3–गूं मध्यमाभ्यां नमः। 4–गैं अनामिकाभ्यां नमः। 5–गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। 6–भिं (गः?) करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

(ख) 1–गां हृदयाय नमः। 2–गीं शिरसे स्वाहा। 3–गूं शिखायै व षट्। 4–गैं कवचाय हुम्। 5–गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। 6–भिं (गः?) अस्त्राय फट्।

गणपति का ध्यान इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है—

खर्वं महास्थूलतरं सिन्दूरारुणविग्रहम्।।
लम्बमानमहापीनोदरं रक्तत्रिलोचनम्।
महागजेन्द्रवदनं शुण्डादण्डविराजितम्।।
दानधारागन्धलुब्धभ्रमद्भ्रमरराजितम्।
मूषिकेन्द्रपरिन्यस्तपद्मासनसुखोषितम्।।
चतुर्भुजं दक्षकरे परशुं जपमालिकाम्।
वामे स्वभग्नदन्तं च मोदकं तदधोऽपि च।।
मोदकोपरि विन्यस्तशुण्डं पीतोरूयुग्मकम्।
गिरिजानन्दनं भग्नैकदन्तं गणनायकम्।।

सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिविधायकम्।
ध्यात्वैवं पूजयेत् पाद्यादिभिः पुष्पानुलेपनैः।।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पृथगेवोपकल्पितैः।
ततोऽक्षतैः प्रकुर्वीत तस्यावरणपूजनम्।।
लम्बोदरो वक्रतुण्डो गजवक्त्रस्तथैव च।
हेरम्ब एकदन्तश्च महाकायस्ततः परम्।।
गणाधिपतिरित्येवं तथा विघ्नविनायकः।
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च ङेऽन्तैरेतैः प्रपूजयेत्।।
सप्तविंशतिवारांश्च जपित्वा मन्त्रमुत्तमम्।
समर्प्यानेन मन्त्रेण प्रणमेद् भक्तिभावितः।।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरोत्तमैः।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः।।
विधायेत्थं गणेशार्चां भास्करार्चामथाचरेत्।
मन्त्रो दण्डत्रपादित्यैस्त्र्यक्षरस्तस्य कीर्तितः।।[62]

नाटे कदवाले, महास्थूल, सिन्दूर के समान के समान लाल शरीरवाले, लटकते हुए महापीन (=चौड़े) पेटवाले, रक्तवर्णवाली तीन आँखों वाले, विशाल हाथी के मुखवाले, सूँड से सुशोभित, दान जल की धारा की गन्ध के लोभी तथा मंडराते हुए भौरों से शोभायमान, मूषक के ऊपर कमलासन लगाकर बैठे हुए, चार भुजावाले, दायें हाथ में कुठार, बायें हाथ में जयमाला, अपना टूटा हुआ दाँत और उसके नीचे लड्डू लिए हुए, लड्डू के ऊपर सूँड रखे हुए, पीली जाघों वाले, गिरिजा के पुत्र, टूटे हुए एकदांत वाले, गणों के स्वामी, सारे विघ्नों को दूर करने वाले, समस्त सिद्धियों को देने वाले गणपति का उक्त रूप में ध्यान कर उनकी पूजा करनी चाहिए। पूजा पाद्य आदि पुष्प अनुलेप, धूप दीप नैवेद्य से पृथक्-पृथक् करनी चाहिए। इसके बाद अक्षतों से उन (गणपति) के आवरण की पूजा करनी चाहिए। लम्बोदर वक्रतुण्ड गजवक्त्र हेरम्ब एकदन्त, उसके बाद महाकाय गणाधिपति विघ्नविनायक शब्दों के आदि में प्रणव और अन्त में 'नमः' जोड़कर ङेऽन्त इन शब्दों के द्वारा परिवार की पूजा करनी चाहिए।

मन्त्रस्वरूप का निरूपण इस प्रकार निर्दिष्ट है—

(1) ॐ लम्बोदराय नमः। (2) ॐ वक्रतुण्डाय नमः। (3) ॐ गजवक्त्राय नमः। (4) ॐ हेरम्बाय नमः। (5) ॐ एकदन्ताय नमः। (6) ॐ महाकायाय नमः। (7) ॐ गणाधिपतये नमः। (8) ॐ विघ्नविनायकाय नमः।

मन्त्र का सत्ताईस बार जप कर इसी मन्त्र से जप का समर्पण कर भक्तिभाव से युक्त होकर प्रणाम करें। (प्रणाम करते समय निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ना चाहिए—"अभिप्रेतार्थ ... नम:।" इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए देवताओं एवं राक्षसों के द्वारा जिनकी पूजा की जाती है, समस्त विघ्नों के नाशक उन गणपति को नमस्कार है)। इस प्रकार गणेश की पूजा का यही विधान है।

इसी ग्रन्थ में अष्टदलों पर कालीपूजा के पश्चात् विनायकों के इक्यावन नामों का उल्लेख प्राप्त होता है, विघ्नों का नाश करने तथा कालीपुत्र होने के कारण चौबीस दलों वाले कमल की कर्णिका में इनकी पूजा करनी चाहिए। विनायकों के नाम निम्नवत् हैं—(1) लम्बोदर, (2) एकदन्त, (3) गजवक्त्र, (4) विनायक, (5) विघ्नहर्ता, (6) भीमनाद, (7) हेरम्ब, (8) मूषवाहन, (9) जितेन्द्रिय, (10) सुमुख, (11) ?, (12) एकानंश, (13) गणेश्वर, (14) सूर्पकर्ण, (15) देवीपुत्र, (16) घटोदर, (17) महाकाय, (18) भग्नदन्त, (19) विश्वमूर्ति, (20) महाबल, (21) स्थिरासन, (22) व्यालसूत्री, (23) चलकर्ण, (24) गणाधिप, (25) ऊर्ध्वरोमा, (26) महापद्मी, (27) गणाधिप, (28) महास्वन, (29) महाशुण्ड, (30) जगन्नेता, (31) सिद्धिदाता, (32) बलिप्रिय, (33) कार्यकर्त्ता, (34) कर्मसाक्षी, (35) प्रभिन्न, (36) कार्यकर्त्ता, (37) उग्रनाद, (38) महावाग्मी, (39) शिवपुत्र, (40) अरिमर्दन, (41) सिन्दूरमुण्ड, (42) हेमाङ्ग, (43) अङ्कुशधारी, (44) सटाधर, (45) आखुध्वज, (46) रतित्यागी, (47) महागण्ड, (48) महेश्वर, (49) मत्तरूप, (50) सुरत्राता, (51) महाविघ्नौधमर्दन।[63]

शक्तिसङ्गमतन्त्र में गाणपत सम्प्रदाय के आठ भेदों की सूचना दी गयी है।[64] किन्तु इनके नाम कहीं उपलब्ध नहीं हैं। पात्रनिर्णय प्रकरण में तथा अर्घ्यदान प्रकरण में इस सम्प्रदाय निजी विशिष्टता की सूचना निश्चित तौर पर दी गयी है।[65]

यजुर्वेद में 'गणानां त्वा गणपति'[66] इस वाक्य से ब्रह्मा-विष्णु आदि गणों के अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये हैं और वैदिक यज्ञक्रिया से इनकी उपासना करना सर्वोत्तम माना गया है। *गणपतितत्त्वरत्नम्* में गणपति के वैदिक स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया है। भगवान् आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य को तन्त्रमार्ग से ही गणपति की उपासना करने पर शीघ्र सिद्धि उपलब्ध होती है, ऐसा कहा गया है। जैसाकि प्रपञ्चसार में—

आवाह्य विघ्नेश्वरमर्चयित्वा प्रागुक्तया तन्त्रविधानकल्पतया।
निवेदयित्वा सह भक्ष्यलेह्यै: प्राज्यैश्च साज्यैरपि भोज्यजातै:।।[67]

भारतीय साधना और अध्यात्म परम्परा में भगवत्तत्त्व की प्राप्ति के लिए या जीव और ब्रह्म के ऐक्य बोध के लिए गुरु ही एकमात्र साधन है। अत: उसकी सर्वोच्चता तथा अनिवार्यता स्वत: सिद्ध है। तन्त्रागमों में गुरु को सर्वोपरि स्थान दिया गया है और उसे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का साक्षात् स्वरूप कहा गया है—

गुरु: साक्षादादिनारायण: पुरुष:।[68]

इस प्रकार तन्त्र और योगशास्त्र में गुरु के बिना अध्यात्म तथा साधना राज्य में प्रवेश ही नहीं किया जा सकता। साधना प्रणाली, इष्ट प्राप्ति और योग-सिद्धि के लिए गुरु ही सर्वसमार्थ्यवान् सिद्ध पुरुष है।

तन्त्रागम की सपर्या गुरुगम्य मानी गयी है। जो साधक गुरु-परम्परा से गणपति-सपर्या की विद्या उपलब्ध करते हैं, उन्हें ही उपासना में प्रवेश करने का अधिकार होता है। श्रीविद्या के साधक सबसे पहले श्रीगणेश की पूजा करते हैं, किन्तु इसे गणेश-पूजन न कहकर 'महागणपति-सपर्या' शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसका रहस्य है—'**अष्टाविंशतिवर्णविशिष्टो महाहेरम्बस्य मनुः**'—यह गौडपाद का सूत्र है। यह मनु (मन्त्र) दो प्रकारका है—एक सम्बोधनान्त 'गणपते' पद से और दूसरा चतुर्थ्यन्त 'गणपतये'—घटित है। श्रीविद्या के उपासक सम्बोधनान्त मन्त्र का जप करते हैं जो मोक्षेच्छु हैं, वे चतुर्थ्यन्त मन्त्र को जपते हैं—

सम्बुद्ध्यान्तमहामन्त्रो शाक्तमार्गप्रबोधकः।
चतुर्थ्यन्तमहामन्त्रो मोक्षमाजैकहेतुकः।।

ऐसा प्रमाण मिलता है। क-ट-प आदि रीति से महागणपति शब्दों में म-5, हा-8, ग-3, ण-5, प-1, ति-6 इन संख्याओं के योग से 28 संख्या लब्ध होती है। यह महाषोडशी का परिचायक है। इसी प्रकार ग-3, ण-5, प-1, ति-6 इनके योग से 15 संख्या निकलती है। यह पञ्चदशाक्षरी का द्योतक है। अतएव श्रीविद्या के साथ महागणपति का दृढतर सम्बन्ध व्यक्त होता है।

तन्त्रशास्त्र की उपासना में देश-काल एवं उपकरणों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। भगवान् परशुराम के मतानुसार तन्त्रागम-पूजा में सर्वप्रथम महागणपति का ध्यान करना चाहिए। जैसाकि कहा गया है—

देवं सिद्धलक्ष्मीसमाश्लिष्टपार्श्वम्, अर्धेन्दुशेखरमारक्तवर्णं मातुलुङ्गगदापुण्ड्रेक्षुकार्मुकशूल-सुदर्शनशङ्खपाशोत्पलधान्यमञ्जरी निजदन्ताग्रलरत्नकलशपरिष्कृत पाण्येकादशकं प्रभिन्नकटमानन्दपूर्णमशेष विघ्नध्वंसनिघ्नं विघ्नेश्वरं ध्यात्वा।[69]

'भगवान् महागणपति का वाम पार्श्व सिद्धलक्ष्मी से आलिङ्गित है।' वे मणिमय रत्नसिंहासन पर विराजमान हैं। उनका शरीर करोड़ों सूर्यों के समान चमकीला रक्तवर्णवाला है। मस्तकपर अर्धेन्दु (चन्द्रमौलि) है। ग्यारह हाथों में मातुलङ्ग, गदा, इक्षु-कार्मुक, सुदर्शन, शूल, शङ्ख, पाश, कमल, धान्यमञ्जरी, अपना ही भग्नदन्त तथा रत्नकलश हैं। इस प्रकार परमानन्दपूर्ण गण्डस्थल से मद की धारा बहाने वाले सर्वविघ्नविध्वंसक महागणपति का ध्यान करना चाहिए।'

तत्पश्चात् सिद्धपीठ (त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रादि) में गन्धाक्षत-पुष्प-पूजित शुद्ध जलपूर्ण कलश से अर्घ्य-स्थापना करनी चाहिए। उसी अर्घ्यामृत-जल से अर्घ्यपात्र आदि का संस्कार करके महागणपति की पूजा-सपर्या पञ्चावरण से करनी चाहिए। जैसाकि—**मूलेन पञ्चावरणपूजां कुर्यात्**[70]—ऐसा कहा गया है।

पूजा–सपर्या के उपचार में पाद्य–अर्घ्य–आचमन–स्नान–वस्त्र–भूषण–गन्ध–पुष्प–धूप–दीप–नैवेद्य–नीराजन आदि का प्रयोग होता है। जैसाकि **'देवं गणनाथ दशधोपतर्प्य, षोडशोपचारैरुपचर्य, गणपतिबुद्ध्यैकं बटुकं, सिद्धलक्ष्मीबुद्ध्यैकां शक्तिं चाहूय गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य निर्विघ्नमन्त्रसिद्धिर्भूयादित्यनुग्रहं कारयित्वा नमस्कृत्य यथाशक्ति जपेत्।'**[71]

तन्त्रालोक में गणपति की वन्दना करते हुए महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि उस दिव्य शक्ति सम्पन्न परमेश्वर के परप्रकाशात्मक विभव से भूषित, इन्द्रियों की मङ्गल मरीचियों से मनोज्ञ, चक्रेश्वर की तरह स्फुरित, स्वात्म में स्थित, एकत्व से विभूषित चन्द्रवत् सुन्दर और शाश्वत स्फुरणशील, देवी के पुत्र गणपति मेरे संवित्समुद्र को सम्यक् रूप से समुच्छलित करें।[72] आचार्य जयरथ ने *विवेक* व्याख्या में विस्तार से गणपति तत्त्व की समीक्षा की है।[73] उपासना विधि की विवेचना करते हुए कहा गया है कि—गणेश पूजन के लिए विग्रह को देवालय के द्वार के ऊपर दक्षिण तरफ स्थापित कर पूजा करनी चाहिए।[74] आचार्य जयरथ ने मण्डलार्चन क्रम में गणपति की पूर्व दिशा में उपासना अर्चना का निर्देश किया है।[75] इसी स्थल पर यह भी निर्दिष्ट है कि गणेश की पूजा करने से विघ्नों का निश्चित अपसारण होता है। श्रीगणेश और वटुक एक श्रेणी के आराध्य है। भगवान् श्रीगणेश के नीचे समस्त मन्त्र कदम्बक से भजन का विधान है।[76]

गणेश मन्त्र — 'ॐ गां गणेशाय नमः' है।[77]

पञ्चरात्रागम के *सनत्कुमारसंहिता* में आवाहन और निवेदन की यही विधि कही गयी है—

गायत्रीयं गणपतेः प्रतिष्ठाकर्मसु स्मृता।
महोल्कायेति मन्त्रेण स्वाहान्तेन यथाविधि।
तेनैवावाह्येद्देवं गणेशं विघ्ननायकम्।[78]

गणपति की पूजा में गणपति–गायत्री का प्रयोग करना चाहिए—ऐसा *सनत्कुमारसंहिता* में कहा गया है और मन्त्र का इस प्रकार निर्देश हुआ है—

ॐ नमो गणाधिपतये शूर्पकर्णाय विद्महे।
कोटिरक्षाय धीमहि तन्नो गणपतिः प्रचोदयात्।।[79]

जयाख्यसंहिता में विघ्नेश मन्त्र की साधना प्रक्रिया तथा उनकी क्षमता का विस्तृत विवरण मिलता है। मन्त्र की सिद्धि के लिए न्यास, ध्यान, पूजा, हवन, जप आदि का विधान बताया गया है। विघ्नेश मन्त्र से साक्षात् देव विनायक प्रत्यक्ष आते हैं तथा क्षणमात्र में साधक की सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। साधक को युद्ध, राजकुल, द्यूत एवं विवाद सभी में विजय प्राप्त होती है। इस मन्त्र के प्रभाव से गृह में धन–धान्य और लक्ष्मी का निवास रहता है, साथ ही परिवार की निरन्तर वृद्धि होती है। विनायक मन्त्र का यही संविधान है।[80]

पूजा के अवसर पर मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए—वह तान्त्रिकों का सिद्धान्त है। *जयाख्यसंहिता* में गणेशमुद्रा का स्वरूप इस प्रकार है—

दक्षिणेन तु हस्तेन साङ्गुष्ठेन च मुष्टिना।
प्रदेशिनीं ह्यनामां च वामहस्तस्य पीडयेत्।।
प्रयत्नकृतशङ्खानां पृष्ठे योज्या च मध्यमा।
लम्बमानकराकारा यथा संदृश्यते च सा।।
मुष्टेर्नातिसमीपस्थां वामहस्तात्कनिष्ठिकाम्।
दक्षिणाङ्गुष्ठवाह्ये च दंष्ट्रावत्परिभावयेत्।।
ईषत्तिर्यक्ततस्स्पष्टो वामाङ्गुष्ठस्तथा परः।
यथा तौ परिदृश्यते गजकर्णोपमौ द्विज।।
गणेश्वरस्य मुद्रेयं सर्वविघ्नक्षयङ्करी।।[81]

गणेश-पूजा की क्रम-विधि *नारदीय-संहिता* में संग्रहपूर्वक वर्णित है, जो इस प्रकार हैं—

गणेशयागं वक्ष्यामि विघ्नानां विनिवृत्तये।।
ग्रामादीनां चतुर्दिक्षु गणेशस्थानमुच्यते।
प्राच्यां पश्चिमवक्त्रं तु पूर्वास्यं पश्चिमे भवेत्।।
उत्तरे दक्षिणास्यं तु दक्षिणे चोतराननम्।
दिननाथं यजेदग्रे प्रासादस्याग्रदिक्षु च।।
कीर्तितश्चास्य मन्त्रोऽयम् ॐगणाधिपतये नमः।
विशेषयागं कुर्वीत चतुर्थ्यामस्य मन्त्रवित्।।[82]

याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय में गणपतिकल्प प्रकरण उपलब्ध है जिसमें यह बताया गया है कि कर्म में विघ्न का नाश और उस कर्म को सिद्धि के लिए रुद्र और ब्राह्मण ने विनायक (गणपति) को पुष्पदन्त आदि गणों का अधिपति बनाकर नियुक्त किया। इसी स्थल पर गणेश की महिमा, पूजा-विधि आदि का विस्तार से विवेचन हुआ है।[83]

शारदातिलक में बड़े विस्तार से गणपति पूजा का विधान दिया हुआ है। कई प्रकार के जप, ध्यान और होम बतलाये गये हैं। पटल के अन्त में एक स्तोत्र है। इस सुन्दर स्तवन के माहात्म्य में बतलाया गया है कि जो लोग यज्ञ और तप के साथ इस स्तुति से गजराजवक्त्र का आराधन करते हैं वे सर्वलक्ष्मीनिधि हो जाते हैं।[84]

ईशानशिवगुरुदेव पद्धति में प्रपञ्चगणपति पटल प्राप्त है। यहाँ यह प्रतिपादित है कि भगवान् शिव स्वयं गणपति के रूप में, सृष्टि, स्थित, संहारक रूप में विश्व का संचालन करते हैं। शिव स्वयं ही छः रूपों में आमोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, विघ्न तथा विनायक क्रमशः अपनी शक्तियों—सिद्धि, कान्ति, समृद्धि, मदनवती, क्लिन्नया तथा क्लेदनी के साथ विराजमान हैं—

आमोदोऽथ प्रमोदस्तदनु च सुमुखो दुर्मुखोऽन्यस्तु विघ्नस्तद्वन्
वैनायकाढ्यः षडिति गजमुखा दिव्यभूषाम्बराढ्याः।
सिद्धिः कान्तिः समृद्धिस्त्वथ मदनवती क्लिन्नया क्लेदनी चेत्
याभिर्वामाङ्कगाभिः स्मररसललिताः शक्तिभिस्तेऽर्चनीयाः।।[85]

लेखक की मान्यता है कि उपर्युक्त विवरण पूर्वाचार्यों से अनुमोदित है। प्रपञ्च गणनायक की उपासना कलियुग में सिद्धिप्रदायी है—

इतीह खलु कीर्तितो मनुरयं प्रपञ्चे यथा
तथा च ललितागमे मुकुटवातुले तूदितः।
प्रपञ्चगणनायकस्तु सविद्यानमन्त्रक्रिय–
स्त्रिवर्गविभवार्थिनां कलियुगेऽपि सिद्धिप्रदः।।[86]

ध्यातव्य है कि गणपति के ध्यान, स्तुति, कवच, हृदय, उपनिषद्, शतनाम एवं सहस्रनाम का प्रामाणिक संकलन डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा के ग्रन्थ *गणपति स्तुति कल्पद्रुम* [87] में उपलब्ध है। इस कोष ग्रन्थ में 8 वैदिक स्तुति, 39 पौराणिक स्तुति, 11 गीता स्तुति, 33 आगमिक स्तुति, 20 नामस्तुति तथा 54 आचार्य कृत स्तुति का दुर्लभ मूल संस्कृत में संकलन है। गणपति के 32 स्वरूपों का ध्यान भी यहाँ प्रस्तुत है। इस प्रकार यह ग्रन्थ गणपति साधना की महत्ता को सुस्पष्ट करता है।[87]

श्रमण–संस्कृति में ज्ञान का संकलन करने वाले 'गणेश' अर्थात् गणधर की मान्यता स्वीकृत है। केवलज्ञान (सर्वज्ञता) को उपलब्ध करने पर अरहन्त (तीर्थंकरों) का उपदेश प्रायः गणधर के निमित्त से ही होता है—गणधर ही उसका मुख्यपात्र होता है तथा वे ही उस ज्ञान का द्वादश अङ्गों एवं चतुर्दश पूर्वों में संकलन करते हैं। भारत के बाहर श्रीगणेश मुख्यरूप से बौद्धों के तान्त्रिक देवता है। 30 तिब्बतीय बौद्धधर्मग्रन्थ साक्षात् रूप से श्रीगणेश से सम्बद्ध हैं। मूलतः ये ग्रन्थ अधिकांशतः संस्कृत में और कतिपय प्राकृत भाषा में लिखित थे जो अब तिब्बतीय अनुवाद के रूप में सुरक्षित हैं। इन धर्मग्रन्थों से पूर्ण श्रीगणेश का स्वरूप विकास एवं अनुष्ठान तिब्बतीय परम्परा में सुरक्षित है। इन सभी धर्मग्रन्थों में गणेश के तान्त्रिक स्वरूप की अभिव्यक्ति है। कतिपय ग्रन्थों में पुत्ररूप में शिव से सम्बद्ध हैं। पर इनको बोधिसत्त्व–अवलोकितेश्वर से उद्भूत मानने की प्रवृत्ति प्रबल है और इसी दृष्टि से अवलोकितेश्वर और शिव के एकत्व को दिखलाया गया है और इस तरह गणेश को बौद्ध–भिन्न परम्परा से निर्गत करके पूर्णरूप से बौद्ध परम्परा से सम्बद्ध किया गया है।

आगमशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय देवालय एवं विग्राहार्चा है। अतएव गणेश से सम्बन्धित देवप्रासाद एवं मूर्तियों का समूह आगमानुसार प्रतिपादित किया जा रहा है। *समराङ्गणसूत्रधार* में विनायक के वेणुभद्र, कुञ्जर, विजय, कुम्भ तथा मोदक आदि आठ भेद देव–प्रासाद का स्वरूप निर्दिष्ट है।[88]

वैखानसागम में परिवारबेर के कल्पनावसर पर विमान के द्वितीयावरणद्वारपाल के रूप में 'वक्रतुण्ड' का लक्षण वर्णित हैं—

द्वितीयावरणद्वारदक्षिणे चोत्तराभिमुखः प्रवालाभः एकदन्तः कण्ठादूर्ध्वं गजाकारो वामनः कुशध्वजो वेणुकङ्कतवाहनः शङ्खरवः चतुर्भुजः कदलीफलहस्तः आर्द्रापतिः श्रीविष्ठाजो वक्रतुण्डः।[89]

क्रियाधिकार में 'वक्रतुण्ड' का स्वरूप प्रायः विमानार्चनकल्प की तरह ही कल्पित है।[90]

साधक के पुरुषार्थ का आरम्भ और अन्त सत्सङ्ग में ही निहित है। सत्सङ्ग शरीर का धर्म नहीं है, बल्कि आत्म-धर्म है। स्वधर्म को अपनाने में सभी साधक सर्वदा स्वतन्त्र हैं। स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। स्वधर्मनिष्ठ होने में किसी प्रकार की पराधीनता तथा अर्समथता नहीं है। 'स्व' का बोध स्वतः प्राप्त है कि समस्त दृश्य एक ही ईकाई है जिसकी माँग है, वह भी अद्वितीय ही है और जिसमें माँग है, वह 'मैं' तत्त्व भी एक ही है। अब विचार किया जाय कि माँग का अनुभव 'स्व' को यह स्वतः होता है और जब माँग सबल और स्थायी हो जाती है, तब काम का स्वतः नाश हो जाता है। काम का नाश होते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। यह जीवन का सत्य है, स्वरूप से अभिन्नता है। उस अभिन्नता का स्पष्टीकरण सत्सङ्ग से ही अर्थात् गणेश-तत्त्व से ही होता है, जो कि जीवन का सत्य है।

सन्दर्भ

1. 'दी मोस्ट पापुलर राईटर कॉण्टीन्यू टु बी तुलसीदास एण्ड हिज रामचरितमानस इज दी फर्स्ट च्वाइस ऑफ रीडर्स।' यूनेस्को, वाल्यूम 11-1-03, अक्टूबर, 1963 *रीजनल सेण्टर ऑफ इन्फारमेशन बुलेटिन।*
2. *बालकाण्ड,* मङ्गलश्लोक-7.
3. *बालकाण्ड,* मङ्गलश्लोक-1.
4. *मानवगृह्यसूत्र, 2/14.*
5. *संस्कृति के चार अध्याय* — श्रीरामधारी सिंह दिनकर, पृ. 95.
6. *शतपथ ब्राह्मण,* 9.3.1.25.
7. *ताण्ड्य ब्राह्मण,* 19.14.2.
8. *तैत्तिरीय ब्राह्मण,* 3.11.4.2.
9. *यजुर्वेद,* 11.15.
10. *अथर्ववेद,* 6.140.1-3.
11. तत्रैव, 8.6.15.
12. *अलक्ष्मनाशन सूक्त,* 10.155.1-4.
13. *यजुर्वेद,* 3.57; *तैत्तिरीय संहिता,* 1.8.6.1; *शतपथ ब्राह्मण,* 2.6.2.10.
14. *तैत्तिरीय ब्राह्मण,* 1.1.3.3.
15. *गोभिल गृह्यसूत्र,* 4.4.30.

16. *शतपथ ब्राह्मण*, 2.1.1.7.
17. *हिस्ट्री आफ दी तान्त्रिक रिलीजन*, पृ. 78.
18. *ऋग्वेद*, 2.33.1.
19. Comarswamy attributes his reputation as 'Patern of Letters' to the double meaning of the word. Gana, which besides being the name of followers of 'Siva', is also the technical designation of earl lists or collections of related works -(Ganesa).
20. *निरुक्त*, 10.6.
21. *गणपत्यथर्वशीर्ष*, 11.
22. तदेव 4.
23. *गणपत्युपनिषद्*, 8.
24. *नारायणोपनिषद्*, अध्याय-5; *तैत्तिरीयारण्यक*, प्रपाठक-10.
25. *मैत्रायणीसंहिता*, 2.9.6.
26. *ऋग्वेद*, 2.23.1.
27. *बृहदारण्यकोपनिषद्*, 1.3.20-21.
28. *बौधायनधर्मसूत्र*, 2.5.6.
29. तदेव, 3.3.10, 14.
30. *ब्रह्मसूत्र*, 1.1.22.
31. *नृसिंहपूर्वतापिनी*, 3.3.
32. *गणपत्यथर्वशीर्ष*-1.
33. *गणेशपुराण*, उपासना खण्ड, 345.8.
34. *ब्रह्मवैवर्तपुराण*, 3.44.87.
35. ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवल धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्। — *गणपत्यथर्वशीर्ष*, 1.
36. *गणेशोत्तरतापनी*, 3.
37. क्षीरोदं पौर्णमासीशशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरङ्ग
चिद्व्योम स्फारनादं रुचिविसरलसद्विन्दुवक्रोर्मिमालम्।
आद्यस्पन्दस्वरूपः प्रथयति सकृदोंकारशुण्डः क्रियादृग्
दन्त्यास्योऽयं हठाद् वः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः।। — *चिद्गगनचन्द्रिका*, 1.1.
38. *एकदन्तस्तोत्र*, 3-4.
39. नमो गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मसि नित्यं। त्वं वाङ्मयः, चिन्मयः, त्वम् आनन्दमयः। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। त्वयि लयमेष्यति, त्वयि प्रत्येति। *गणपतिउपनिषद्*, खण्ड, 1.
40. *मुद्गलपुराण*, भक्तमनोरथसिद्धि, *गणेशस्तोत्र*, 4.
41. "ॐ नमो श्री आद्या। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या आत्मरूपा। देवा तूंचि गणेशु। सकलमति प्रकाशु।"— *ज्ञानेश्वरी*, 1.1-2.

42. *विनायकरहस्ये*, प्रथमभाग, पृ. 70.
43. तत्रैव, प्रथम भाग, पृ. 70.
44. तत्रैव, प्रथम भाग, पृ. 70.
45. तत्रैव, प्रथम भाग, पृ. 71.
46. तत्रैव, प्रथम भाग, पृ. 71.
47. तत्रैव, प्रथम भाग, पृ. 42.
48. तत्रैव, प्रथम भाग, *ज्ञानसारः*, अध्याय-6, श्लोक 100-122.
49. नादबिन्दुकलात्मा यः प्रणवादिपुश्चयः। गिरां चतुष्टयं यस्य चत्वारो बाहवः क्रमात्।।
शङ्खेन वैखरीं वाचं गदया मध्यमां गिरम्। सुदर्शनेन पश्यन्तीं पद्मेन च परां भ्रियात्।।
एकदन्त उदग्रेण दताव्यामोहदारकः। मूषिको वाहनं यस्य सोऽव्याद् रहस्यविग्रहः।। — *जपसूत्रम्*, भाग-1, भूमिका, 38.39.
50. द्वे रूपे मूषिकस्यास्य सितासितेऽखिलात्मनः। कृत्स्नच्छिदश्च भूतानामन्तः कुहरगाहिनः।।
नक्तन्दिवञ्च सर्वेषामायुर्मूलानि कृन्ततः।। — तत्रैव, श्लोक-40.
51. व्यस्तौ च विषमौ यौ तु नासाविवरचारिणौ। रूपे मूषिकवर्यस्य तौ जानीयाद् विशेषतः।। — *जपसूत्रम्*, श्लोक-41.
52. समासेन समत्वेन संयमेन समीहया। तयोः सन्धौ समारोहं नादबिन्दुकलात्मनः।
ओङ्कारस्य विजानीत मातृकागणगीष्पतेः। समावृत्तिं गणेशस्य या बहुश्रेयसी मता।। — तत्रैव, श्लोक, 42-43.
53. स्फारास्यं ब्रह्मसूक्तं प्रमितिरुतिरदं सम्यगुद्गीथशुण्डं, द्वे विद्ये यत्र नेत्रेविशदपरिचयापास्ततामिस्रभालम्।
मन्त्रं वक्षश्च पार्श्वौ यतिततिकुशलौ दोषः ऋष्यादयश्च मात्राद्यैस्ते समाढ्याः सकलमखतनुं नौमि सिद्ध्यृद्धिपादम्।।
— *जपसूत्रम्*, भाग-1, उपोद्घातः, श्लोकः 97.
54. व्यूहं जिह्मं व्यदारीदृतचरितदता दन्तियूथेशतुण्डो व्यामोहं च व्यतर्दीद्व्यसनपरिकरं तुर्णमोङ्कारशुण्डः।
नादस्स्पन्दस्फुरताऽरुणरुचिरतनुः स्विन्नबिन्द्वच्छमौलिर्मात्राक्लृप्तैः स दोर्भिर्जयतु गणपतिस्तुर्यपश्यद्द्विनेत्रः।।
— *जपसूत्रम्*, भाग-1, उपोद्घातः, श्लोकः 98 तथा उसका भाष्य
55. सम्यक् साम्यं समासे यदवति कुशलं कर्मणां शुण्डशौर्यं वीर्यं दन्तस्य यस्माद् हरति विषमतां व्यासमन्वेति या च।
आब्रह्माकारवृत्तिः प्रभवत च यता धाम मौलेः प्रसन्नं वर्तेते द्वौ समाधी च नयनयुगलेऽतः समावृत्तिमूर्त्तिः।।
— *जपसूत्रम्*, भाग-1, उपोद्घातः, श्लोकः 99 तथा उसका भाष्य
56. *चण्डी पत्रिका*, श्रीमहागणपति-साधना विशेषांक, प्रयाग, पृ. 90.
57. *तात्पर्यदीपिका*, पृ. 653.
58. *सौभाग्यभास्करभाष्य*, पृ. 125.
59. *श्रीविद्यारत्नाकर*, पृ. 110, श्रीकरपात्रस्वामी विरचित सम्पादक, दत्तात्रेयानन्दनाथ, अष्टम संस्करण, 2012, श्रीविद्या साधना पीठ, नगवाँ, वाराणसी-5.
60. इण्टरनेशनल एकेडेमी आव साइंसेज, नई दिल्ली, 1958.
61. *महाकालसंहिता*, गुह्यकालीखण्ड, पटल 12.389-493.
62. *महाकालसंहिता*, गुह्यकालीखण्ड, पटल 12/494-505.
63. *महाकालसंहिता*, गुह्यकालीखण्ड, पटल-12.
64. *शक्तिसङ्गमतन्त्र*, 1.6.139.

65. तत्रैव, 1.4.170.
66. *शुक्लयजुर्वेदवाजसनेयीसंहिता*, 23.19.
67. *प्रपञ्चसार*, 16.36.
68. *महानारायणोपनिषद्*, 1.
69. *परशुरामकल्पसूत्र*, खण्ड 2.4.
70. *परशुरामकल्पसूत्र*, खण्ड 2.7.
71. *परशुरामकल्पसूत्र*, खण्ड 2.9.
72. *तन्त्रालोक*, प्रथमाह्निक, श्लोक 6.
73. *तन्त्रालोक*, प्रथमाह्निक, श्लोक 6 पर विवेकव्याख्या
74. *तन्त्रालोक*, पञ्चदशमाह्निक, श्लोक 184.
75. प्राच्यां दिशि गणेशाध आरभ्याभ्यर्चयेत्तत: – एकोनत्रिंशमाह्निकम्, श्लोक 28.
76. *तन्त्रालोक*, प्रथमाह्निक, श्लोक 6 पर विवेकव्याख्या
77. *तन्त्रालोकविवेक*, खण्ड 12, पृ. 185.
78. *सनत्कुमारसंहिता*, अध्याय 1.94, 99.
79. *सनत्कुमारसंहिता*, अध्याय 1.94.
80. *जयाख्यसंहिता*, 32.1-36.
81. *जयाख्यसंहिता*, 8.89-92.
82. *नारदीयसंहिता*, 28.33-36.
83. *याज्ञवल्क्यस्मृति*, आचाराध्याय, श्लोक 272-294.
84. *शारदातिलक*, पटल-13.
85. *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति*, मन्त्रपाद पटल, 15/45.
86. *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति*, मन्त्रपाद पटल, 15/136.
87. *गणपतिस्तुतिकल्पद्रुम* , डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009
87. *समराङ्गसूत्रधार*, 58.13-14.
88. *विमानार्चनकल्प*, पटल-20.
89. *क्रियाधिकार*, 5.170-171.

असि. प्रोफेसर, धर्मागम विभाग,
संस्कृतविद्याधर्मविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

❑

शास्त्रीय–मनोविज्ञान के मानक एवम् कुण्डलिनी योग

डॉ. आशुतोष आङ्गिरस

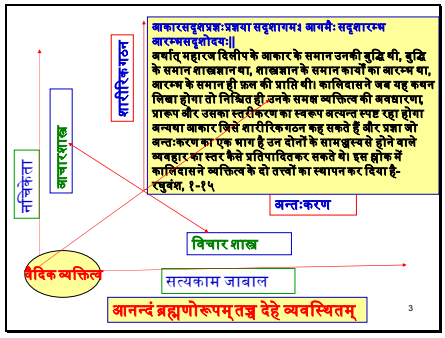

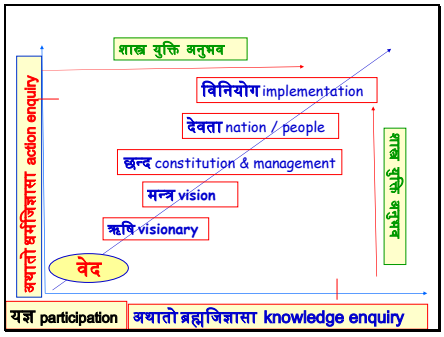

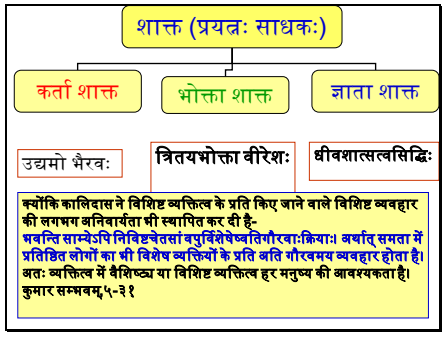

प्रतीक (बिम्ब प्रधान एवम् मिथक प्रधान)
Chakra Locations
Sahasrara
Ajna
Vishuddhi
Anahata
Manipura
Swadhisthana
Mooladhara
प्रदत्त
अब समस्या है इन दोनों प्रदत्तों और प्रतीकों के सम्बन्धों को परिभाषित करने की, दोनों के सम्बन्ध को सुलझाने का प्रयत्न कुण्डलिनी योग ने किया है।
5

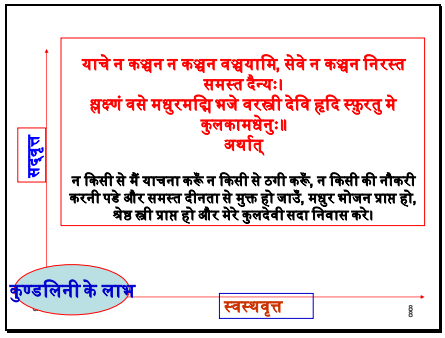
याचे न कञ्चन न कञ्चन वञ्चयामि, सेवे न कञ्चन निरस्त समस्त दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्री देवि हृदि स्फुरतु मे कुलकामधेनुः॥
अर्थात्
न किसी से मैं याचना करूँ न किसी से ठगी करूँ, न किसी की नौकरी करनी पड़े और समस्त दीनता से मुक्त हो जाउँ, मधुर भोजन प्राप्त हो, श्रेष्ठ स्त्री प्राप्त हो और मेरे कुलदेवी सदा निवास करे।
सदृश
कुण्डलिनी के लाभ
स्वस्थवृत्त
8

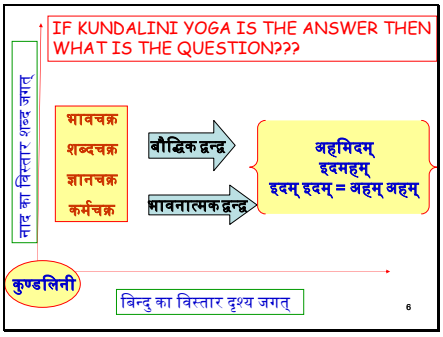
IF KUNDALINI YOGA IS THE ANSWER THEN WHAT IS THE QUESTION???
नाद का विस्तार शब्द जगत्
भावचक्र
शब्दचक्र
ज्ञानचक्र
कर्मचक्र
बौद्धिक द्वन्द्व
भावनात्मक द्वन्द्व
अहमिदम्
इदमहम्
इदम् इदम् = अहम् अहम्
कुण्डलिनी
बिन्दु का विस्तार दृश्य जगत्
6

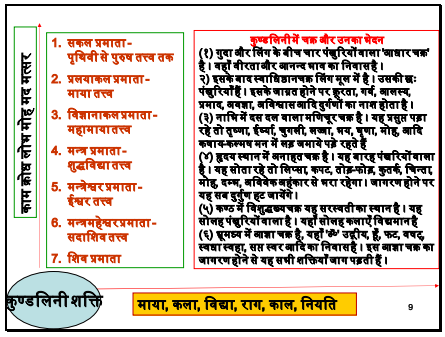
काम क्रोध लोभ मद मत्सर
1. सकल प्रमाता- पृथिवी से पुरुष तत्त्व तक
2. प्रलयाकल प्रमाता- माया तत्त्व
3. विज्ञानाकल प्रमाता- महामाया तत्त्व
4. मन्त्र प्रमाता- शुद्धविद्या तत्त्व
5. मन्त्रेश्वर प्रमाता- ईश्वर तत्त्व
6. मन्त्रमहेश्वर प्रमाता- सदाशिव तत्त्व
7. शिव प्रमाता
कुण्डलिनी में चक्र और उनका भेदन
(१) गुदा और लिंग के बीच चार पंखुरियों वाला 'आधार चक्र' है। यहाँ वीरता और आनन्द भाव का निवास है।
२) इसके बाद स्वाधिष्ठानचक्र लिंग मूल में है। इसकी छः पंखुरियाँ हैं। इसके जाग्रत होने पर क्रूरता, गर्व, आलस्य, प्रमाद, अश्रद्धा, अविचार आदि दुर्गुणों का नाश होता है।
(३) नाभि में दस दल वाला मणिपूर चक्र है। यह प्रसुप्त पड़ा रहे तो तृष्णा, ईर्ष्या, घृणा, लज्जा, भय, घृणा, मोह, आदि कषाय-कल्मष मन में सड़ा जमाये पड़े रहते हैं
(४) हृदय स्थान में अनाहत चक्र है। यह बारह पंखरियों वाला है। यह सोता रहे तो लिप्सा, कपट, छोड़-फोड़, कुतर्क, चिन्ता, मोह, दम्भ, अविवेक अहंकार से भरा रहेगा। जागरण होने पर यह सब दुर्गुण हट जायेंगे।
(५) कण्ठ में विशुद्धाख्य चक्र यह सरस्वती का स्थान है। यह सोलह पंखुरियों वाला है। यहाँ षोडश कलाएँ विद्यमान है
(६) भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र है, यहाँ 'ॐ' उद्गीथ, हूँ, फट, वषट्, स्वधा स्वहा, सप्त स्वर आदि का निवास है। इस आज्ञा चक्र का जागरण होने से यह सभी शक्तियाँ जाग पड़ती हैं।
कुण्डलिनी शक्ति
माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति
9

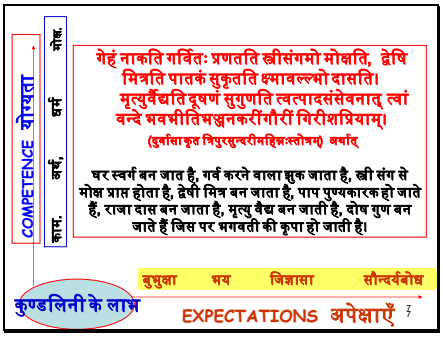
COMPETENCE योग्यता
काम. क्रो. लो. मो. मद. मत्स. धर्म. अर्थ.
गेहं नाकति गर्वितः प्रणतति स्त्रीसंगमो मोक्षति, द्वेषि मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वत्पादसंसेवनात् त्वां वन्दे भवभीतिभञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम्।
(दुर्वासा कृत त्रिपुरसुन्दरीमहिम्नःस्तोत्रम्) अर्थात्
घर स्वर्ग बन जात है, गर्व करने वाला झुक जाता है, स्त्री संग से मोक्ष प्राप्त होता है, द्वेषी मित्र बन जाता है, पाप पुण्यकारक हो जाते हैं, राजा दास बन जाता है, मृत्यु वैद्य बन जाती है, दोष गुण बन जाते हैं जिस पर भगवती की कृपा हो जाती है।
बुभुक्षा भय जिज्ञासा सौन्दर्यबोध
कुण्डलिनी के लाभ
EXPECTATIONS अपेक्षाएँ
7

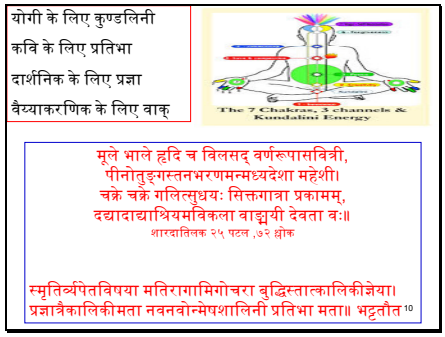
योगी के लिए कुण्डलिनी
कवि के लिए प्रतिभा
दार्शनिक के लिए प्रज्ञा
वैय्याकरणिक के लिए वाक्
The 7 Chakras, 3 channels & Kundalini Energy
मूले भाले हृदि च विलसद् वर्णरूपासवित्री,
पीनोतुङ्गस्तनभरणमन्मध्यदेशा महेशी।
चक्रे चक्रे गलित्सुधयः सिक्तगात्रा प्रकामम्,
दद्यादाद्याश्रियमविकला वाङ्मयी देवता वः॥
शारदातिलक २५ पटल ,७२ श्लोक
स्मृतिर्व्यपेतविषया मतिरागामिगोचरा बुद्धिस्तात्कालिकीज्ञेया।
प्रज्ञात्रैकालिकीमता नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता॥ भट्टतौत
10

कुण्डलिनी = प्रतिभा

निजभवननिवासादुद्भरन्तीविलासैः पथिपथिकमलानांचारुहासं विधाय।
तरुणतरणिकान्तिःकुण्डली देवता सा शिवसदनसुधाभिर्दीपयेदात्मतेजः॥
आधारबन्धःप्रमुखक्रियाभिः समुत्थिता कुण्डलिनी सुधाभिः।
त्रिधाबीजं शिवमर्चयन्ति शिवाङ्गना वः शिवमातनोतु॥

"सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः। शारदातिलक २५ पटल, ७३ श्लोक

शक्तिः प्रतिभानम्।
प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा मता।
स्फूर्त्याख्यो बुध्दिविशेषः।
झटिति विषयग्राहिणी बुध्दिः।
"प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमाप्रज्ञा।"
प्रातिभाद्वा सर्वम्। योग सूत्र, 3-33
इत्थं प्रातिभविज्ञानं किं किं कस्य न साधयेत्। यत्प्रातिभाद्वा सर्वं चेत्यूचे शेषमहामुनिः॥ तंत्रालोक, 13-146

11

CHAKRA TEST

Part One **मूलाधार चक्र**

1. Are you comfortable with your physical body and are you rarely sick? **Yes No Both**
2. Are you self-motivated and do you achieve most of your goals? **Yes No Both**
3. Are you very passionate about most things and willing to fight for just causes? **Yes No Both**
4. Do you have a strong drive to live and do you feel that you have a right to exist? **Yes No Both**

ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तरविवर-लसत्-कोटिसूर्य-प्रकाशां
वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी।
आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा
वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः॥

12

Part Two : **स्वाधिष्ठानचक्र**

1. Are you free from asthma as well as allergies (such are skin conditions, candida, yeast infections, etc.)? **Yes No Both**
2. Are you very creative with your mind and do you have the ability to see situations from different perspectives (mentally and emotionally)? **Yes No Both**
3. Are you confident, enthusiastic and outgoing and are you able to spread joy to others with a constant positive outlook on life? **Yes No Both**
4. Are you connected to your emotional self and do you understand that feeling and expressing your emotions are your right? **Yes No Both**

स्वाधिष्ठानाख्यमेतत् सरसिजममलं चिन्तयेद् यो मनुष्य-
स्तस्याऽहङ्कारदोषादिक-सकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन।
योगीशः सोऽपि मोहाद्भुत-तिमिरचये भानुतुल्यप्रकाशो
गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधावाक्यसन्दोहलक्ष्मीः॥

13

Part Three: **मणिपूर**

1. Are you free of digestive problems such as ulcers, food intolerances, constipation or diarrhea, blood sugar disorders, sluggish liver, etc.? **Yes No Both**
2. Are you mentally strong and clever and do you have an exceptional memory and learn new things quickly? **Yes No Both**
3. Can you truly say your ego is in balance and are you confident enough that you easily admit when you are wrong? **Yes No Both**
4. Does your belief system include knowing that a higher power exists and do you use your personal power to openly discuss your beliefs? **Yes No Both**

ध्यात्वैतन् नाभिपद्मं प्रभवति नितरां संहृतौ पालने वा
वाणी तस्याननाब्जे निवसति सततं ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः।

14

Part Four : **अनाहत चक्र**

1. Is your breathing deep and when stressful situations arise does your breathing pattern remain constant? **Yes No Both**
2. Can you say no to people without feeling guilty or remorseful? **Yes No Both**
3. Are you friendly and compassionate and do you rarely gossip? **Yes No Both**
4. Are you a loving and giving person with little thought of receiving back and are you free of jealousy and envious thoughts? **Yes No Both**

ध्यायेद् यो हृदि पङ्कजं सुरतरुं शर्वस्य पीठालयं
देवस्याऽनिलहीनदीपकलिकाहंसेनसंशोभितम्।
भानोर्मण्डलमण्डितान्तरलसत्किञ्जल्कशोभाकरं
वाचामीश्वर ईश्वरोऽपि जगतां रक्षाविनाशे क्षमः॥
योगीशो भवति प्रियात् प्रियतमः कान्ताकुलस्याऽनिशं
ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणो ध्यानावधानक्षमः।
गद्यैः पद्यादिभिश्च सततं काव्यान्सुधारावहो
लक्ष्मीरङ्गणदैवतःपरपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात्॥

15

Part Five: **विशुद्धि चक्र**

1. Do you rarely have sore throats, shoulder and jaw tenseness or problems expressing yourself? **Yes No Both**
2. Are you very organized and do you have a good ability to plan and give orders? **Yes No Both**
3. Do you consider yourself a person with high integrity and are you devoted and loyal? **Yes No Both**
4. Do you always communicate your inner truths and are you open and honest with others regardless of the situation? **Yes No Both**

इह स्थाने चित्तं निरवधि विनिधायाऽत्मसम्पूर्णयोगः
कविर्वाग्मी ज्ञानी स भवति नितरां साधकः शान्तचेताः।
त्रिकालानां दर्शी सकलहितकरो रोगशोकप्रमुक्त-
श्चिरञ्जीवी निरवधिविपदां ध्वंसहंसप्रकाशः॥

16

Part Six : आज्ञाचक्र

1. Do sleep well and are you able to get out of bed in the morning easily with no problems? **Yes No Both**
2. Do you trust your intuition and insights and do you have a good imagination without losing contact with reality? **Yes No Both**
3. Do you have a deep understanding of your existence that allows you to have little fear or anxiety in your thoughts? **Yes No Both**
4. Are you connected to your unconscious self and do you have a strong intuitive (psychic) awareness? **Yes No Both**

ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः
सर्वज्ञः सर्वदर्शी सकलहितकरः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता॥
अद्वैताचारवादी विलसति परमापूर्वसिद्धि-प्रसिद्धो
दीर्घायुः सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहतौ पालने च॥

17

How You Use the Test Results

If you answered 4 Yeses in one section it means that you are connected to that chakra center.

1. If you answered 3 Yeses it means you have a good understanding of that chakra power.
2. If you only answered only 2 Yeses it means that you have the possibility to use that center but you do not completely understand its function.
3. If you answered one or zero Yeses than it shows that you have little understanding of that chakra's full potential.

Remember there is no right or wrong – it just is. This Chakra Test was only for you to see that you use different "thoughts of energy" and by understanding your own energy will only help you to achieve your maximum potential.

Part Seven: सहस्रारचक्र

1. Does your body feel and smell clean and is your lymph system flowing freely? **Yes No Both**
2. Do you consider yourself a visionary and is your creativity and inspiration unlimited? **Yes No Both**
3. Are you spiritually aware and are you in balance with your masculine and feminine energies? **Yes No Both**
4. Do you believe in enlightenment and the universal consciousness and do you feel you have a purpose and a spiritual knowingness? **Yes No Both**

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तोनरवरो
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्यकृतिनः
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला॥

18

धैर्यपूर्वक श्रवण के लिए धन्यवाद

20

वरिष्ठ प्रवक्ता,
संस्कृत विभाग,
सनातनधर्म कॉलेज (लाहौर)
अम्बाला छावनी (हरियाणा)
चलवाणी–9464558667

उपनिषदों में कुण्डलिनी विमर्श

डॉ. शम्भु कुमार झा

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसम्मितषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।[1]

उपर्युक्त सन्दर्भ श्रीविद्याप्रकरण से संकलित है। कुण्डलिनी ज्ञान विशुद्ध रूप से आगम का वर्ण्यविषय है। यहाँ यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि आगम के मूल में भी वेद ही है क्योंकि अवैदिक शास्त्रों का कर्मों का विचारों का एवं दर्शनों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में समादर नहीं है। जो तथाकथित अवैदिक दर्शनों का प्रचार-प्रसार सुना जाता है वह भी उस सम्प्रदाय विशेष का नहीं है। इस हेतु से मैं सम्पूर्ण आगमतन्त्रशास्त्र को वैदिक शास्त्र ही मानता हूँ। आगम शब्द का अर्थ प्रसङ्गवश उचित प्रतीत होता है—

आगतं पञ्चवक्त्रात्तु गतं च गिरिजानने।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते।।
गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत।।[2]

वाचस्पत्यम् में—

आगतः शिवक्त्रभ्यो गतश्च गिरिजानने।
मग्नश्च हृदयाम्भोजे तस्मादागम उच्यते।।[3]

वर्तमान घोर कलिकाल में हमें विचार करना पड़ेगा जहाँ श्रौतविद्याएँ नष्टप्रायः हो चुकी हैं। अध्येताओं की स्थिति भी शून्य तक पहुँच गई है। व्यावसायिक बुद्धि से विद्वत् समाज भी अस्पृश्य नहीं है। रागद्वेष चरमोत्कर्ष पर है तो क्या किया जाए?

त्रैगुण्य संसार में वेद को भी त्रैगुण्य कहा गया है—**'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'**[4] इस स्थिति में आगमशास्त्र का उपाय ही शेष रहता है। कहा भी गया है—

विना ह्यागममार्गेण नास्ति सिद्धिः कलौ प्रिये।
निर्वीर्या श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव।।[5]

इसका अभिप्राय है कि आगममार्ग के विना इस कलिकाल में सिद्धि संभव नहीं है। श्रौतपरम्परा के लोप हो जाने के कारण अज्ञानपूर्वक किया हुआ अनुष्ठान फल देने में समर्थ नहीं है। विषहीन सर्प के समान श्रौत की स्थिति हो चुकी है। सत्ययुग आदि में विधि ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान होने से अनुष्ठान का फल सद्य: प्राप्त था परन्तु कलियुग में ये परम्पराएँ धूमिल हो चुकी हैं।

मत्स्यपुराण में भी कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिर्यथा।
नदीनां च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालय:।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मतम्।।[5]

कुण्डलिनी शब्द कुण्ड शब्द से मत्वर्थ में ल प्रत्यय करने पर बनता है। सर्प का वर्तुलाकार होकर उपवेशन। कुण्डलिनी विद्या का सम्बन्ध सैद्धान्तिक कम प्रायोगिक ज्यादा है। ऐसे तो भारतीय समस्त विद्याएँ प्रायोगिक हैं। साहित्य भी प्रायोगिक है। इन विद्याओं का सम्बन्ध भौतिक जगत् के साथ अध्यात्म से अधिक है। कुण्ड का ज्ञान अगर नहीं हो तो कुण्डलिनी का ज्ञान कैसे होगा। इसी क्रम में कुण्ड का निर्वचन प्रस्तुत करते हैं—

कौ पृथिव्यां विलं देवि दृश्यते सुमनोहरम्।
तस्मात् कुण्डं समाख्यातं साधकानां हिताय वै।।[7]

पिण्ड और ब्रह्माण्ड का ऐक्य मनीषियों ने स्वीकार किया है। *भैरवयामल* तन्त्र का वचन इस प्रकार है—
'चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।'[8]

मानव शरीर में वह सब कुछ विद्यमान है जो इस ब्रह्माण्ड में किसी भी रूप से संस्थित है। मनुष्य के शरीर में षट्चक्र का वर्णन प्राप्त होता है। *ब्रह्माण्ड पुराण* में ललितोपाख्यान में विस्तार से श्रीचक्र श्रीविद्या का ज्ञान प्राप्त होता है। श्रीयन्त्र का तात्त्विक अध्ययन अगर किया जाए तो ब्रह्माण्ड का रहस्य स्फुटित हो सकता है। *गरुड पुराण* के प्रेतखण्ड में षट्चक्र पर विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। *श्रीनेत्रतन्त्र* मृत्युञ्जय भट्टारक के सप्तमाधिकार में षट्चक्र पर प्रकाश डाला गया है—

अत: परं प्रवक्ष्यामि ध्यानं सूक्ष्ममनुत्तमम्।
ऋतुचक्रं स्वराधारं लिक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।।
ग्रन्थिद्वादशसंयुक्तं शक्तित्रयसमन्वितम्।
धामत्रयपथाक्रान्तं नाडित्रयसमन्वितम्।।
ज्ञात्वा शरीरं सुश्रोणि दशनाडिपथावृतम्।

द्वासप्तत्या सहस्रैस्तु सार्धकोटित्रयेण च।।
नाडिवृन्दैः समाक्रान्तं मलिनं व्याधिभिर्वृतम्।
सूक्ष्मध्यानामृतेनैव परेणैवोदितेन च।।
आप्यायं कुरुते योगी आत्मनो वा परस्य च।
दिव्यदेहः सभवति सर्वव्याधिविवर्जितः।।[9]

षट्चक्रसाधन में योग एवं ध्यान की महत्ता है। यह ध्यान पुस्तकीय ज्ञान पर कदापि आश्रित नहीं है। इसे तो गुरुपरम्परा से ही प्राप्त किया जा सकता है। तान्त्रिक विधि का आश्रय कभी से पुस्तक के आलोक में नहीं लेना चाहिए। यह विद्या सद्यःफलदायिनी है। इस हेतु से उत्तम साधक इस क्रिया के लिए नितान्त आवश्यक है। *श्रीनेत्रतन्त्र* के अनुसार जन्मस्थान उपस्थेन्द्रिय (जननेन्द्रिय) में नाडीचक्र, नाभि में मायाचक्र, हृदय में योगीचक्र, तालु में भेदनचक्र, बिन्दु में दीप्तिचक्र एवं नाद में शान्तचक्र कहा गया है—

जन्माख्ये नाडीचक्रं तु नाभौ मायाख्यमुत्तमम्।
हृदिस्थं योगिचक्रं तु तालुस्थं भेदनं स्मृतम्।
बिन्दुस्थं दीप्तिचक्रं तु नादस्थं शान्तमुच्यते।।[10]

इन षट्चक्रों का भेदन जागतिक किसी अन्य साधन से सम्भव नहीं है। यह शरीर सभी साधनों का साधन तथा उपायों का उपाय है। हमें स्वयं को पहचान कर आत्माश्रित होना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानव शरीर को साधन का धाम बताया है—

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाई न जे परलोक सुधारा।।[11]

इस हेतु से *नेत्रतन्त्र* में कहा गया है—**'पूर्वोक्तानि च सर्वाणि ज्ञानशूलेन भेदयेत्।'**[12]

कुण्डलिनी को जागृत् करने के लिए जननेन्द्रिय का संयम प्रथम अपेक्षित है। आसन, प्राणायाम का इस क्रिया में बहुत ही महत्त्व है। आहार, विहार का संयम इस क्रिया में बहुत जरूरी है। ज्ञानशूल को निम्नलिखित श्लोक द्वारा कहा गया है—

आक्रम्य जन्माधाराख्यं तन्मूलं पीडयेच्छनैः।
जन्माधारस्य सुश्रोणि पर्यायान् शृण्वतः परम्।।[13]

जन्माधार के कुछ पर्याय कहे गए हैं—जन्मस्थान, कन्द, कूर्म, स्थानपञ्चक, मत्स्योदर एवं मूलाधार।[14] यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि केवल हठयोग से इस विद्या का विकास नहीं होता। इसमें श्रद्धा, मन्त्रजाप, शुचिता भी आवश्यक है। *ललिता सहस्रनाम* में तीन शक्तियों का विवेचन प्राप्त होता है—'इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति।'[15] इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति तीनों पारमार्थिक रूप से एक है तथापि भावभेद के कारण भेदपूर्वक स्थित है—

इच्छामात्रविनिर्दिष्टा ज्ञानरूपा क्रियात्मिका।
एका सा भावभेदेन तस्य भेदेन संस्थिता।।[16]

पूर्व में जिस मूलाधार की चर्चा हुई है वह चतुरस्र चतुर्दलपद्म के समान है। उस चतुर्दल पद्म के मध्य स्थान बिन्दुस्थान में कुलकुण्ड नामक स्थान में मुँह ढककर सुप्तप्राय कुण्डलिनी सदा रहती है। कुण्डलिनी का यह मुख्य निवास स्थान है—*ललितासहस्रनाम टीका सौभाग्यभास्कर व्याख्या* में भास्करराय ने उक्त प्रसङ्ग पर प्रकाश डाला है—"मूलाधाराख्यं चतुर्दलं पद्मं तत्कर्णिकायां मध्ये बिन्दौ कुलकुण्डनामके मुखमाच्छाद्य कुण्डलिनी तत्रैव सर्वदैव सुप्ता तिष्ठति।"[17] षट्चक्रों में प्रतिचक्र आदि एवं अन्त में दो-दो ग्रन्थियाँ कही गई हैं। इन ग्रन्थियों का नाम—'ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि।'[18] *ललितासहस्रनाम* में साक्षात् कुण्डलिनी त्रिपुरसुन्दरी को ही कहा गया है। प्रमाणार्थ नामोच्चारण प्रसङ्गवश आवश्यक प्रतीत होता है—

तडिल्लतासमरुचि: षट्चक्रोपरि संस्थिता।
महासक्ति: कुण्डलिनी विसतन्तुतनीयसी।[19]

कुण्डलिनी शब्द का निर्वचन करते हुए भास्करराय ने लिखा—कुण्डले अस्या: स्त इति कुण्डलिनी आकृत्या भुजङ्गी वा तत्स्वरूपं *तन्त्रराजे*—

मूलाधारस्थवह्न्यात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्ति: कुण्डलाख्या प्राणाकाराथ तैजसी।।
प्रसुप्तभुजगाकारा त्रिरावर्ता महाद्युति:।।
मायाशीर्षा नदन्तीं तामुच्चरत्यनिशं खगे।
सुषुम्ना मध्यदेशे सा यदा कर्णद्वयस्य तु।
पिधाय न शृणोत्येनं ध्वनिं तस्य तदामृतिम्।।[20]

यह कुण्डलिनी तेजोमय है। सर्पाकार सुषुप्तावस्था में है। ग्रन्थानुसार यह सर्प कुण्डली मारकर अपने पुच्छ के मुँह में दबाकर निर्जीवावस्था में पड़ा है। इसे जागृत् करने के लिए पद्मासन और प्राणायाम का आश्रय लिया जाता है। *योगवाशिष्ठ* चूडालोपाख्यान में—

पुर्यष्टकापराख्यस्य मनसो जीवनात्मिकाम्।
विद्धि कुण्डलिनीमन्तरामोदस्येव मञ्जरीम्।।[21]

देवीपुराण में—

यत: शृङ्गाटकाकारा कुण्डलिन्युच्यते तत:।[22]

अथवा वाग्भवबीज को ही कुण्डलिनी कहा जाता है। श्रीभास्करराय ने वामकेश्वर तन्त्र का उद्धरण प्रकृत प्रकरण में उल्लिखित किया है।

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा।।
मूलकन्दं फणाग्रेण दंष्ट्रकमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समन्विता।।
पद्मासनगता स्वस्था गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।।
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः।।
रुद्रग्रन्थिं विभिद्यैव कमलानि भिनत्ति षट्।।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदिते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निवृत्तिकारणम्।।[23]

इसका अभिप्राय है सर्पाकार गुण्डलिनी को जागृत् करना साधकों का कर्त्तव्य है। साधकों को चाहिए कि पद्मासन पर बैठकर स्वरूप में अवस्थित हो जाए। गुदामार्ग को आकुञ्चित कर प्राणायाम के द्वारा कुम्भक विधि से स्वाधिष्ठानगत अग्नि को प्रज्वलित करे। अग्नि के दाह एवं वायुदाव के कारण चिरनिद्रा में सोया हुआ सर्पराज कुण्डलिनी जागृत् होती है। इसके बाद क्रमशः ब्रह्म, विष्णु एवं रुद्र ग्रन्थि का भेदन होता है। इस प्रकार षट्कमल रूप चक्र का भेदन हो जाता है। इसके ऊर्ध्व सहस्रदल कमल पर शिव व शक्ति प्रमुदित अवस्था में विद्यमान रहता है। यह अवस्था ज्ञानमोक्ष का मार्ग है। *अरुणोपनिषद्* में कहा गया है—

उत्तिष्ठत मा स्वप्त अग्निमिच्छध्वं भारताः।
राज्ञः सोमस्य तृप्तासः सूर्येण सयुजोषसः।।[24]

हे साधकगण! व्यर्थ का आलस मत करो, सावधान हो जाओ अग्नि की उपासना करो। राजा सोम की तृप्ति हेतु प्रीति हेतु यह कर्म करो। इसकी व्याख्या में भास्कर राय लिखते हैं—हे श्रीविद्योपासक उपासना करो, प्रमाद मत करो। अग्नि की इच्छा करो, स्वाधिष्ठानगत तेजोमयी कुण्डलिनी की इच्छा करो। इच्छा रूपी दण्ड को समेकित करके उक्त कार्य हेतु तत्पर बनो। विशुद्धि अनाहतचक्र के मध्यवर्ती सूर्य के साथ उस अग्नि के साथ राजराजेश्वरी सहित राजराजेश्वर के साथ युक्त हो जाओ। अर्थात् अमृत से तृप्त होवो। अग्निकुण्डलिनी को जागृत् कर सूर्यकुण्डलिनी के साथ एकीकृत करके इन दोनों के द्वारा चन्द्रमण्डल शिवशक्ति से युक्त हो उससे उत्पन्न अमृतधाराओं से बहत्तर हजार नाड़ी समूहों के मार्गों को तृप्त करते हुए स्वयं तृप्त बनो।

मालिनीविजय तन्त्र के अनुसार खेचरी मुद्रा के द्वारा शक्तिपर्यन्त सब प्रकार से आपूरण कर जब तक चन्द्र का उदय नहीं होता तब तक उस शक्ति पर आरूढ़ होने पर सूक्ष्मनिरञ्जन भावग्राह्य असन्दिग्ध, सर्वावस्था वर्जित परधाम उपलब्ध होता है।

बद्ध्वा पद्मासनं योगी नाभावक्षेश्वरं न्यसेत्।
दण्डाकारं तु तावत्तन्नयेद्यावत् कखत्रयम्।।
निगृह्य तत्र तत्तूर्णं प्रेरयेत् खत्रयेण तु।
एतां बद्ध्वा महायोगी खे गति प्रतिपद्यते।।[25]

योगशिखोपनिषद् के अनुसार यह मानवशरीर शिवालय है। गुदामार्ग और मेढ्र के बीच मूलाधारत्रिकोण सदृश है। यह स्थान जीव को शिव बनाने वाला है। कुण्डलिनी शक्ति यही प्रतिष्ठित है। जहाँ से वायु–अग्नि–बिन्दु–नाद, हंस–मन आदि की उत्पत्ति होती है। यह कामरूप पीठ सब कामनाओं को पूर्ण करने के लिए है–

देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।
गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्।।
शिवस्य जीवनरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते।
यत्र कुण्डलिनीनाम पराशक्तिः प्रतिष्ठिता।।
यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते।
यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्तते।।
यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः।
तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम्।।[26]

योगचूडामणि उपनिषद् के अनुसार षट्चक्रज्ञान के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। इन चक्रों का स्वरूप इस प्रकार है—

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।
नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्।।
षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा।
सहस्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि।।[27]

शरीर में दशवायु कहे गये हैं। उनमें से दो प्रमुख हैं—प्राण एवं अपान। शास्त्रानुसार हृदय में प्राण एवं गुदा में अपान स्थित है। इसे जो जानता है वह योगवेत्ता है। मनुष्य एकदिन रात्रि में इक्कीस हजार छः सौ साँस लेता है। योगी प्रत्येक श्वास में जप करता है—

ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित्।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।।
एतत् संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
अजपा नामगायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।।[28]

कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकार की कही गई है—

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा।।[29]

इस प्रकरण में यह भी ध्यातव्य है कि भोजन हविष्यान्न ही करे, कटु-अम्ल-लवणादि का त्याग आवश्यक है। क्षीरभोजन प्रशस्त माना गया है। प्रसङ्गवश खेचरी मुद्रा पर प्रकाश डाला गया है—

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।।
चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे यतः।
तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता।।[30]

अधिक जानकारी के लिए उपनिषद् का अध्ययन किया जा सकता है। *गौतमीय महातन्त्र* में वह्नि-कुण्डलिनी, सूर्यकुण्डलिनी एवं चन्द्रकुण्डलिनी प्रशस्त हैं चौथी कुण्डलिनी तुर्यकुण्डलिनी केवल ज्ञानरूपा है जो भगवान् वासुदेव का रूप है—

कुण्डलीं त्रिविधां तत्र तथा बीजाक्षरं त्रिधा।
तुरीयां कुण्डलीं मूर्ध्नि वासुदेवं तुरीयकम्।।
हृदये कामबीजं च सूर्यायुतसमप्रभम्।
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र सूर्यकोटिसमप्रभाम्।।
हृदयाद् गलपर्यन्तं ध्यायेदनाकुलः सुधीः।
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं मायामिन्दुयुतप्रभाम्।।
चन्द्रकुण्डलिनीं तद्वत् स्रवदमृतविग्रहाम्।
बिन्दुनादमयं वासुदेवं विन्दौ तुरीयकम्।।
लकारं मूलदेशे तु द्रवत्स्वर्णनिभं स्मरेत्।
मूलादिहृदयं यावद् वह्निकुण्डलिनीं तथा।।[31]

यह चतुर्थकुण्डलिनी देशकालादिव्यवस्था से रहित है तथा तेजोमय है सर्वदा इसका ध्यान करें—

देशकालाद्यवच्छिन्नं सर्वतेजोमयं स्मरेत्।
तुर्यकुण्डलिनीं तद्वत् केवलज्ञानविग्रहाम्।।[32]

शारदातिलक में शब्दब्रह्ममयी कुण्डलिनी से शक्ति का प्रादुर्भाव कहा गया है। इसका क्रम अत्यन्त रहस्यमय है। धीरे-धीरे व्यावहारिक धरातल पर उसका ज्ञान निम्नप्रकार से किया जाता है। शक्ति से ध्वनि, ध्वनि से नाद, नाद से निरोधिका, निरोधिका से अर्द्धेन्दु, पुनः बिन्दु, बिन्दु से परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरीवाक् का प्रादुर्भाव होता है—

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिस्ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका।।
ततोर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरीशब्दजन्मभूः।।
इच्छाज्ञानक्रियात्मासौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम्।।
अकारादिसकारान्तां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम्।।[33]

इस प्रकार कुण्डलिनी सिद्धि हेतु साधन साधक का शरीर है योग्य गुरु के सान्निध्य में इन पठित क्रियाओं का अनुसरण करें।

सन्दर्भाः

1. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, भूमिका
2. *महास्वच्छतन्त्र*
3. *वाचस्पत्यम्* कोष
4. *श्रीमद्भगवद्गीता*
5. *योगिनीतन्त्र*
6. *बृहत्तन्त्रसार*, भूमिका
7. *बृहत्तन्त्रसार*, 4 परिच्छेद
8. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, भूमिका
9. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 1-5 श्लोक
10. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 28-29 श्लोक
11. *रामचरितमानस*

12. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 29 श्लोक
13. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 30 श्लोक
14. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 31 श्लोक
15. *ललितासहस्रनाम*
16. *श्रीनेत्रतन्त्रम्*, 7 परिच्छेद, 37 श्लोक
17. *सौभाग्यभास्करव्याख्या*, 89
18. *ललितासहस्रनाम*, 89-90 श्लोक
19. *ललितासहस्रनाम*, 91 श्लोक
20. *सौभाग्यभास्कर व्याख्या*, *ललितासहस्रनाम*, 91 श्लोक
21. *योगवाशिष्ठ*, चूडालोपाख्यान
22. *सौभाग्यभास्करव्याख्या*, वहीं
23. *सौभाग्यभास्करव्याख्या*, वहीं
24. *अरुणोपनिषद्।*
25. *मालिनीविजयतन्त्र*, 7.15-17
26. *योगशिखोपनिषद्*, 1.168-171
27. *योगचूड़ामणि उपनिषद्*, प्रारम्भ।
28. *योगचूड़ामणि उपनिषद्*, 29-32
29. *योगचूड़ामणि उपनिषद्*, 44
30. *योगचूड़ामणि उपनिषद्*, 47-49
31. *गौतमीयमहातन्त्रम्*, 9.65-69
32. *गौतमीयमहातन्त्रम्*, 9.75
33. *शारदातिलक*, 1.108.110

सहायक आचार्य,
वेदविभाग,
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालय
मदाऊ, भांकरोटा, जयपुर-302026।
चलवाणी-9166227681

सूक्ष्मशरीरस्थ चक्र–प्रवाहों के स्थान, कार्य एवं जागरण की फलश्रुतियाँ

डॉ. विजय श्रीवास्तव

ऋषियों के विज्ञान में प्रकृति की शक्ति एवं परमेश्वर के सत्य की अभिव्यक्ति है। इसके आयाम अनगिनत हैं और प्रत्येक आयाम एक–दूसरे में अन्त:प्रविष्ट हैं। इन्हीं अनगिनत आयामों में प्रकृति एवं पुरूष के मध्य संतुलन स्थापित करते चक्र–प्रवाहों को आध्यात्म–शास्त्रों तथा योग–ग्रन्थों में झरने के उद्गम, ज्वालामुखी, चक्रवात, भँवर, प्राण–भण्डार, जीवनाग्नि, विद्युत केन्द्र आदि उपमाओं से व्याख्यायित करने का प्रयास किया जाता है। वस्तुतः मानव मात्र के आत्मिक उन्नयन एवं भौतिक साफल्य का केन्द्र बिन्दु इन्हीं चक्रप्रवाहों में समाहित है। दर्शन की भाषा में मनुष्य का अभ्युदय और निःश्रेयस इन्हीं प्रवाहों पर अवलम्बित है।

कुण्डलिनी को परा प्रकृति कहा जाता है और शरीर में उसका स्थान मूलाधार में है। मूलाधार क्षेत्र में त्रिकोण शक्तिबीज है जिसकी सङ्गति सुमेरु से बिठायी जाती है। सारे शरीर में गोलाकार कण हैं जबकि यह एक ही त्रिभुजाकार है। मलद्वार और जननेन्द्रिय के मध्य भाग में जो लगभग चार अंगुल खाली पड़ी जगह है, उसी के गह्वर में एक त्रिकोण परमाणु है। यह एक प्रकार का शक्ति भँवर है। शरीर में प्रवाहित होने वाली मशीनों में संचारित बिजली की गति का क्रम यह है कि वह आगे बढ़ती फिर तनिक पीछे हटती है और फिर उसी क्रम से आगे बढ़ती पीछे हटती हुयी, अपनी अभीष्ट दिशा में दौड़ती चली जाती है। किन्तु इस मूलाधारस्थ त्रिकोण कण के शक्ति भँवर में सन्निहित विद्युत गोल घेरे में पेड़ से लिपटी हुई बेल की तरह घूमती हुयी संचरित होती है। यह संचार क्रम प्रायः साढ़े तीन लपेटों का है। यह विद्युत धारा इस विलक्षण गति को छोड़कर सामान्य रीति से प्रवाहित होने लगती है।

यह प्रवाह निरन्तर मेरूदण्ड से होकर मस्तिष्क के उस मध्य बिन्दु तक दौड़ता रहता है जिसे ब्रह्मरंध्र या सहस्रार कमल कहते हैं। ये भँवर या शक्ति केन्द्र हैं तो, छोटे रूप में परन्तु उनका उद्गम जहाँ से फूटता है वहाँ से प्रवाह को सहस्रार तक नियमित रूप से जारी रखता है। इन चक्रों के जागरण होने पर अनेक प्रकार के दोष–दुर्गुणों की निवृत्ति होकर सांसारिक सिद्धियों एवं पारलौकिक सत्ता का आनन्द प्राप्त होता है।

त्रिपुरातापनी उपनिषद्[1], *प्रपञ्चसारतन्त्र*[2], *शारदातिलक*[3], *कामकलाविकास*[4], *नित्याषोडशिकार्णव*[5], *नित्योत्सव*[6], *तन्त्रराजतन्त्र*[7], *अहिर्बुध्न्यसंहिता*[8], *मन्त्रमहोदधि*[9], *कौलज्ञाननिर्णय*[10], *कौलावलीनिर्णय*[11], *मेरूतन्त्र*[12], *मन्त्रमहार्णवतन्त्र*[13], आदि योगतन्त्र के ग्रन्थों में विभिन्न यन्त्रों की चर्चा प्राप्त होती है। इन ग्रन्थों में

यन्त्रों को ही चक्र कहा गया है। *वर्षक्रियाकौमुदी* में एक श्लोक उद्धृत कर कहा गया है कि मन्त्रों से यन्त्रपूजा का सम्पादन करना चाहिए और ऐसा करने पर साधक अभीष्ट की प्राप्ति कर लेता है—

सर्वेषामपि मन्त्राणां पूजा यन्त्रे प्रशस्यते।
यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य यदभीष्टं तदाप्नुयात्।।[14]

यन्त्र अथवा चक्रों का साधन दो प्रकार से किया जाता है—1- बहिर्याग और 2- अन्तर्याग। बहिर्याग को शक्ति की बाहरी पूजा या देव्याराधन के रूप में जाना जाता है *शारदातिलक*[15] जैसे गंभीर ग्रन्थ में सांसारिक उद्देश्यों की येन-केन-प्रकारेण पूर्ति के लिए यन्त्रों के आलेखन की अनुमति दी गई है। यथा शत्रुनाश के लिए आग्नेय यन्त्र बनाकर शत्रु के घर के पास गाड़ देना चाहिए। *प्रपञ्चसार*[16] में ऐसे यन्त्र का उल्लेख है जिसके प्रयोग से स्त्री साधक के पास पहुँच जाती है। *तन्त्रराजतन्त्र*[17] में भी सभी वांछित फलों को देने वाले यन्त्रों की व्यवस्थायें दी गई हैं।

जबकि अन्तर्याग में मूलाधार से आज्ञा चक्र तक के चक्रों द्वारा जाग्रत् कुण्डलिनी को ले जाना होता है और तब उसे सहस्रार चक्र में शिवत्व से मिलाना होता है। *सौन्दर्यलहरी*[18] के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा नामक छः चक्रों को पॉच तत्वों एवं मन के अनुरूप माना गया है।

ध्यातव्य है कि अन्तर्याग में देहधारण करने वाला व्यक्ति जो योग के सोपानों पर चल रहा है, उसके जन्म-जन्मान्तर के कल्मष कषाय वहाँ तक नष्ट होते जाते हैं, जहाँ तक वह इन सोपानों पर पहुँच चुका होता है। *योगवासिष्ठ* के छठें अध्याय में कहा गया है—

योगभूमिकयोत्क्रान्तजीवितस्य शरीरिणः।
भूमिकांशानुसारेण क्षीयते पूर्वदुष्कृतम्।।[19]

तात्पर्य यह है कि अन्तर्याग के अन्तर्गत जब साधक ऊर्जा-उन्नयन की साधना आरम्भ करता है तब उसे उसके जाग्रत् हुए तत् तत् ऊर्जा भण्डारों या चक्रों के अनुसार दोष दुर्गुणों की निवृत्ति होकर उत्तरोत्तर निर्मल अवस्था की प्राप्ति होती चलती है।

तन्त्रविद्या के अद्वितीय ग्रन्थ *शारदातिलकतन्त्र* में इन चक्रों के स्थान, कार्य एवं जागरण की फलश्रुतियों के बारे में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। *शारदातिलकतन्त्र* में महान् ग्रन्थकार श्री लक्ष्मणदेशिकेन्द्र सर्वप्रथम मूलाधारचक्र के स्थान, कार्य एवं जागरण की फलश्रुतियों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम्।
परमः सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वकः।।
योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम्।।[20]

अर्थात्—गुदा और लिङ्ग के मध्य चार पंखुड़ियों वाला आधारचक्र या मूल-आधार-चक्र विद्यमान है। वहाँ वीरता और आनन्दभाव का निवास है। इस चक्र के जागरण से विनोदी वृत्ति जाग्रत् होती है। यह काम-क्रीड़ा, उत्साह तथा रसास्वादन का उद्गम है।

इसी प्रकार लक्ष्मणदेशिकेन्द्र स्वाधिष्ठान चक्र का वर्णन करते हुए कहते हैं—

स्वाधिष्ठानं लिङ्गमूले षट्पत्रं च क्रमस्य तु
पूर्वादिशु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनुक्रमात्।
प्रश्रयः क्रूरता गर्वो नाशो मूर्च्छाततः परम्।।
अवज्ञा स्यादविश्वासो जीवस्य चरतो ध्रुवम्।।[21]

मूलाधार चक्र से उठकर ऊर्जा स्वाधिष्ठान चक्र पर पहुँचती है। यह चक्र मूलाधार से कुछ ऊपर लिङ्गमूल में स्थित होता है। इसकी छह पंखुड़ियाँ है। स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण पर क्रूरता, अहंकार, निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, अस्त व्यस्तता, अवज्ञा, अविश्वास, संदेह, आशंका जैसे दुर्गुणों का नाश होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण के पश्चात् ऊर्जा ऊर्ध्वमुखी होते हुए नाभि के सीध में दशदल वाले मणिपूरक नामक चक्र तक पहुँचती है। इस चक्र के जागरण से तृष्णा, ईर्ष्या, भय, निराशा, हीनता, मोह, अरूचि, घृणा, लज्जा आदि कषाय कल्मषों का समापन होता है। *शारदातिलक तन्त्र* में मणिपूरक चक्र के जागरण की फलश्रुतियाँ इस प्रकार बताई गई हैं—

नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम्।
सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा।।
लज्जा भयं घृणा मोह : कषायोऽथ विषादिता।।[22]

मणिपूरक चक्र के जागरण के पश्चात् ऊर्ध्वमुखी ऊर्जा हृदय की सीध में स्थित बारह पंखुड़ियों वाले अनाहतचक्र को जाग्रत् करती है। इस चक्र के जागरण होने पर लिप्सा, छद्म, कुतर्क, चिंता, दंभ, अविवेक आदि दुर्गुणों का विनाश होकर दूरदर्शी विवेक जाग्रत् होता है तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना बनने लगती है। इस चक्र के स्थान, कार्य एवं फलश्रुतियों को बतलाते हुए शारदातिलकतन्त्रकार श्रीलक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं—

हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम्।
लौल्यं प्रनाशः कपटं वितर्कोऽप्यनुतापिता।।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा ममता ततः।
क्रमेण दम्भो वैकल्यं विवेकोऽहंकृतिस्तथा।।[23]

मूलाधार से उठी यह ऊर्जा स्वाधिष्ठान, मणिपूरक होते हुए विशुद्ध चक्र तक पहुँचती है जो कण्ठ में स्थित है यह माँ सरस्वती का स्थान है। यह चक्र 16 पंखुड़ियों वाला है। यहाँ 16 कलाएँ, 16 विभूतियाँ विद्यमान रहती हैं। इस चक्र के जागरण से कला-कौशलरूपी विभूतियों, विशेषताओं का जागरण होता है। *शारदातिलकतन्त्र* में विशुद्धचक्र के विषय में श्री लक्ष्मणदेशिकेन्द्र बतलाते है—

फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः।
कण्ठेऽस्ति भारती स्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम्।।
तत्र प्रणव उद्गीथो हुं फट् वषट् स्वधा तथा।
स्वाहा नमोऽमृतं सप्त स्वराः षड्जादयो विषय।।
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश।।[24]

इस प्रकार विशुद्धचक्र के जागरण के पश्चात ऊर्ध्वमुखी ऊर्जा दोनों भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र को जाग्रत् करती है। यहाँ ॐ, उद्गीथ, हुं, फट्, वषट्, स्वाहा, स्वधा, अमृत, सप्तस्वर, आदि का निवास होता है। इस चक्र के जागरण से दूरदृष्टि, दिव्यदृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि और अष्टसिद्धियों की उपलब्धि होती है। इसे ही तृतीय नेत्र जागरण की संज्ञा भी दी जाती है।

इस प्रकार साधक के शरीर में इन षट्चक्रों के जागरण के माध्यम से प्रसुप्त पड़ी हुई अनन्त एवं असीम शक्तियों का जागरण होता है और मस्तिष्क मध्य में स्थित सहस्रदल कमल खिल उठता है और चरम शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है। जहाँ ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी का पूर्ण विगलन होकर केवल सत्-चित्-आनन्द का ही प्रवाह होता है। मध्यनाड़ी सुषुम्ना को इसीलिए शून्यातिशून्य मध्यधाम भी कहा जाता है। वस्तुतः मध्यधाम सुषुम्ना को शून्य और शिवतत्त्व कहते हैं। शून्यभाव इसलिए कहा जाता है कि यहाँ त्रिपुटियों की कोई सत्ता नहीं बची रहती। योगवासिष्ठ में इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

ततः स्तिमितगम्भीर न तेजो न तमस्ततम्।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सत् किञ्चिदवशिष्यते।।[25]

इन चक्रों का तत्त्व, रंग, तन्मात्रा, ध्वनि तथा लोक पृथक्शः वर्णित है। यथा—मूलाधारचक्र का तत्त्व-पृथ्वी, रंग-पीला, तन्मात्र-गंध, ध्वनि-लं तथा लोक भू होता है। जब कि पेडू की सीध में स्थित स्वाधिष्ठानचक्र का तत्त्व-जल, रंग-श्वेत, तन्मात्रा-रस, ध्वनि-वं, तथा लोक-भुवः होता है एवं नाभि की सीध में स्थित मणिपूरकचक्र का तत्त्व अग्नि, रंग-लाल, ध्वनि-रं, तन्मात्रा-रूप और लोक-स्वः होता है। अनाहतचक्र, जो हृदय की सीध में होता है, का तत्त्व-वायु, रंग-धूम, ध्वनि-पं, तन्मात्रा-स्पर्श तथा लोक-महः होता है। कण्ठमूल की सीध में स्थित विशुद्धचक्र का तत्त्व-आकाश, रंग-नीला, तन्मात्रा-शब्द, ध्वनि-इं, लोक-जनः होता है। भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र की ध्वनि-ॐ, रंग-श्वेत तथा लोक-तप होता है।

इन षड् चक्रों के अतिरिक्त कहीं कहीं सहस्रार को भी चक्र के रूप में परिगणित किया गया है। सहस्रार का स्थान मस्तिष्क का ठीक बीचोबीच का भाग होता है जिसकी आकृति सहस्रदल-कमल तथा रंग-स्वर्णिम है। इसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहते हैं। इस शक्तिकेन्द्र का मध्य अणु भी शरीर के अन्य अणुओं से भिन्न रचना का है। वह गोल न होकर चपटा है। इसके किनारे चिकने न होकर खुरदुरे हैं—आरी के दाँतों से उस खुरदुरेपन की तुलना की जा सकती है। योगियों का कहना है कि उन दाँतों की संख्या एक हजार है। आलंकारिक दृष्टि से इसे एक ऐसे कमल-पुष्प की तरह चित्रित किया जाता है जिसमें एक सहस्र पंखुड़ियाँ खिली हुई हों। इस

अलंकार के आधार पर ही इस अणु का नामकरण सहस्रार-कमल किया गया है। वस्तुतः इसे समस्त चक्रों का संयुक्त स्वरूप समझा जाना चाहिए। आत्मिक विभूतियों एवं सिद्धियों तथा दुर्गम भौतिक सफलताओं का केन्द्र यही है। पिण्डरूपी ब्रह्माण्ड का सारा नियंत्रण नियमन यहीं से होता है। स्वरमंजूषा में इन सप्तचक्रों को सप्तस्वरों की संज्ञा दी गई है और कहा गया है कि कोई साधक इन चक्रों की साधना यदि ठीक प्रकार से कर सके तो वह इन सप्त स्वरों के माध्यम से जिस तरह की भी रागरागिनी बजाने, सुनने और सुनाने में सर्वविध समर्थ बन जाता है।[26] ऐसे साधक के लिए बड़े से बड़े साम्राज्य एवं भौतिक आत्मिक उपलब्धियाँ तिनके के समान हो जाती है। *योगवासिष्ठ* में भी कहा गया है—

तूष्णीमवस्थितेनैव परमं प्राप्यते पदम्।
परमं यत्र साम्राज्यमपि राम तृणायते।।[27]

विज्ञानभैरव में इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

आमूलात् किरणाभासां सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरात्मिकाम्।
चिन्तयेत् तां द्विषट्कान्ते शाम्यन्तीं भैरवोदयः।।[28]

मूलाधार में अथवा हृदय में विद्यमान प्राणशक्ति यौगिक पद्धति के अनुसार सुषुम्ना मार्ग से अथवा मध्यदशा के विकास के कारण ब्रह्मरन्ध्र तक जाते-जाते अत्यन्त सूक्ष्म होकर अन्त में प्रकाश में विलीन हो जाती है। *विज्ञान भैरव* में कहा गया है कि मूलाधार से लेकर द्वादशान्त तक चन्द्र और सूर्य के समान अपनी किरणों से भासित हो रही, तथा क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवस्था की ओर अग्रसर हो रही उस प्राण शक्ति का चिन्तन करें, जो कि द्वादशान्त में जाकर शान्त हो जाती है, नाम-रूप से अतीत अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार के अभ्यास से अत्यन्त सूक्ष्म ध्येय के आकार के भी विगलित हो जाने पर योगी भैरवदशा को प्राप्त कर लेता है।

उद्गच्छन्तीं तडिद्रूपां प्रतिचक्रं क्रमात्क्रमम्।
ऊर्ध्वं मुष्टित्रयं यावत् तावदन्ते महोदयः।।[29]

योगतन्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ *स्पन्दकारिका* के 25वें श्लोक में इस दशा को इस प्रकार वर्णित किया गया है—

तदा तस्मिन् महाव्योम्नि प्रलीने शशिभास्करे।
सौषुप्तपदवन्मूढः प्रबुद्धः स्यादनावृतः।।[30]

इस प्रकार सूक्ष्मशरीरस्थ चक्रप्रवाहों के स्थान, कार्य एवं जागरण की फलश्रुतियों का संक्षिप्त विवेचन सम्पन्न होता है।

संदर्भ

1. *त्रिपुरातापनी उपनिषद्* (2/3)
2. *प्रपञ्चसारतन्त्र* (पटल 21 एवं 34)
3. *शारदातिलकतन्त्र* (7/53-63,24)

4. *कामकलाविलास* (श्लोक 22,26,29,30 एवं 33)
5. *नित्याषोडशिकार्णव* (1/31-43)
6. *नित्योत्सव* (पृ0 6, 64-65)
7. *तन्त्रराजतन्त्र* (2/44-51, 8/30,23)
8. *अहिर्बुध्न्यसंहिता* (अध्याय 23-26)
9. *मन्त्रमहोदधि* (20वीं तरंग)
10. *कौलज्ञाननिर्णय*, (10)
11. *कौलावलीनिर्णय* (3/105, 135)
12. *मेरूतन्त्र* (33वाँ प्रकाश, 562वाँ श्लोक)
13. *मन्त्रमहार्णवतन्त्र* (उत्तर खण्ड, 11वीं तरंग)
14. *वर्षक्रियाकौमुदी* (पृ0 140)
15. *शारदातिलकतन्त्र* (7/58-59)
16. *प्रपञ्चसार* (34/33)
17. *तन्त्रराजतन्त्र* (पटल 8, श्लोक 30-32)
18. *सौन्दर्यलहरी*, (श्लोक-9 गणेश एण्ड कंपनी संस्करण, 1951)
19. *योगवासिष्ठ* (6/4)
20. *शारदातिलकतन्त्र* (25वाँ पटल)
21. *शारदातिलकतन्त्र* (25वाँ पटल)
22. *शारदातिलकतन्त्र* (25वाँ पटल)
23. *शारदातिलकतन्त्र* (25वाँ पटल)
24. *शारदातिलकतन्त्र* (25वाँ पटल)
25. *योगवासिष्ठ* (3/5)
26. *स्वरमंजूषा*, (सप्तचक्र)
27. *योगवासिष्ठ*, (6/12)
28. *विज्ञानभैरव*, (धारणा 5 /28वाँ श्लोक)
29. *विज्ञानभैरव*, (धारणा 6 /29वाँ श्लोक)
30. *स्पन्दकारिका* (25वाँ श्लोक)

वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
गनपत सहाय पी.जी. कालेज
सुलतानपुर (उ.प्र.) 228001

श्रीसद्गुरुदर्शिता कुण्डलीसाधनाविधिकारिका

प्रो. कमलचन्द्रयोगी

गणेशं शारदा नत्वा साम्बशिवं नमाम्यहम्।
कुण्डलिनी–प्रभावेण करोमि पत्रवाचनम्।।1।।
कुण्डलिन्याः हि संगोष्ठ्यां पत्रवाचनहेतुतः।
योगिकमलचन्द्रेण प्रस्तूयन्ते निजानुभवाः।।2।। [1]
गुरुनिर्दिष्टमार्गेण मनःपूतक्रियानुगः।
भवन्तोप्यनुभवन्तु यथा सत्यं तथा गुरुः।।3।। [2]
पश्यन्तु स्वेन्द्रियाण्येव, साक्षाद्व्यवहृतानि च।
ईशांशरूपिणः शिष्याः स्वयमेवानुभूयताम्।।4।।
कर्णाभ्यामनुभूयन्ते शब्दाः, स्पर्शाश्च चर्मणा।
गुरुनिर्दिष्टमार्गेण कुण्डलीमनुभूयताम्।।5।। [3]
स्वादो रसनया ज्ञातः, हस्ताभ्यां ग्रहणं यथा।
पद्भ्यां हि चलनं वार्ता मुखेनान्त्रैर्मलं तथा।।6।।
मूत्रं च गुदया त्यक्तं ज्ञानं बुद्ध्या, मनो हृदा।।
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।।7।।
आत्मैव चात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
उत्थाप्या कुण्डली शक्तिः गुरुमार्गानुसारिभिः।।8।।
प्रज्ञा दार्शनिकैर्ज्ञाता वाग्ज्ञाता शाब्दिकैस्तथा।
योगिभिः कुण्डली ज्ञाता प्रतिभा काव्यकौविदैः।।9।।
स्वमुतारयितुं मात! त्वामाह्वये हि सादरम्।
स्वमुखादक्षराव्यक्तं यदा प्रलप्यते तदा।।10।।
कुण्डलिनी शिवे मूले सुषुम्ना–वेष्टिनी परा।
सार्द्धत्रिवलयारूपा मुखे पुच्छं धृतस्वपा।।11।।
आकृतिं स्वेन भावेन पिण्डलतां बहुधा विदुः।
कुण्डली सर्वथा ध्येया ह्रीं सुषुम्नानुगा सा।।12।।
पराशक्त्यै हि साक्षिण्यै कुण्डल्यै सततं नमः।

क्षिप्रप्रसादिनी मात! षट्चक्र–भेदनं कुरु।।13।।
हृदि शिरसि वाक्केन्द्रे, प्रज्ञाप्रतिभयो: स्थले।
कुण्डलि–योगिनि न्यासे सहस्रारे सुखावहा।।14।।
गुदासङ्कुचिते जाते पृष्ठास्थिकीटिकागतौ।
पृष्ठास्थिनि समीरे च नाभौ परिबन्धने।।15।।
ग्रीवाबन्धे च संजाते जिह्वा–तालु–सुसंयुक्ते।
स्वललाटन्तपे जाते ज्योतिरनुभवेऽपि च।।16।।
कपाले वायुसंचारे कर्णयोर्नाद–गुञ्जिते।
नेत्रयो: पुत्तलीध्याने नवतिकोणधारिणी।।17।।
हुङ्कृते चिक्कते शिष्य: सिंहवद् गुञ्जतेऽपि च।
सहायकैर्न भेतव्यमुत्कूर्दिते च चिक्कते।।18।।
पृष्ठे च मर्दनेऽभ्यङ्गे उपरिष्टाच्च निम्नगे।
सूक्ष्मदेहोड्डने जाते, गुरौ स्मृतौ सुखान्वय:।।19।।
कुण्डल्यां जागृतौ योगी सुखाश्रुभिश्च रोदिति।।
पृष्ठास्थिन्युत्थिते जाते उत्कूर्दते प्रसीदति।।20।।
महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।। 21।। — *सौन्दर्यलहरी*
सुधाधारासारैश्चरण–युगलान्तर्विगलितै:।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा।।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजग–निभ–मध्युष्ट–वलयम्।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी।।22।। — *सौन्दर्यलहरी*
प्रणायामासनाध्यानैर्गुरुणा शक्ति–पातनात्।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं समुच्चारै: सूक्ष्माक्षराभिघातनात्।।23।। !
उत्थिता कुण्डली शक्ति: षट्चक्रभेदनेन सा,
शिवेन रमते सम्यक् सर्वशक्तिविधायिनी।।24।।
पूर्वाह्णे चिन्तितं तत्र वक्तव्यं स्वल्पकालिकम्।
श्रीविद्याकृपया पत्रमर्पितं कमलेन्दुना।।25।।

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थाम्,
समविश्वविद्यालय: जयपुरपरिसर:, त्रिवेणीनगरम्।
जयपुरम्–302018

सनातनधर्मसम्मत साधना के क्रियापक्ष के मार्गदर्शन हेतु कतिपय टिप्पणी

कल्याणानन्दनाथ

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परा गतिः।।

अर्थात् जो शास्त्र-विधि को त्यागकर मनमाने ढंग से उपासना करता है, उसको न तो सिद्धि, सुख की प्राप्ति होती है, और वह परागति को भी प्राप्त नहीं कर पाता।

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य सनातन धर्मान्तर्गत उपासना हेतु साधकों को प्रेरित करने अथवा उक्त उपासना को प्रचारित करने का नहीं है, क्योंकि धर्म एवं अध्यात्म चरमोच्च स्तर की अनुभूति की विषयवस्तु है, जिसका सामान्य क्रय-विक्रय की वस्तुओं की भाँति प्रेरित किया जाना अपमानजनक होगा। लेख का स्पष्ट उद्देश्य मात्र इतना ही है कि जो व्यक्ति उपासना/साधना करने के इच्छुक हों, उनकी शंकाओं के निवारण के साथ-साथ उनकी उपासना के क्रिया पक्ष के सम्बन्ध में स्पष्ट मार्गदर्शन सम्भव हो सके।

जिन्हें साधना हेतु दृढ़ संकल्प किन्हीं कारणवश प्राप्त नहीं हो सका है उनके लिए श्रेयस्कर होगा कि उचित समय एवं प्रेरणा की धैर्य के साथ प्रतीक्षा करें एवं इस हेतु प्रस्तुत टिप्पणी से अपेक्षा करने अथवा लेखक से सम्पर्क करने की आवश्यकता भी नहीं है। यह आलेख विशिष्टतया उन साधकों के लिए है जो यह जानने के लिए उत्सुक हों कि उपासना कैसे की जाए, न कि उपासना क्यों की जाए।

सनातन धर्म में पूजा, पाठ, जप, ध्यान, उपासना, साधना जैसे भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोग होते हैं, जिनका अर्थ कुछ मिले-जुले रूप से समझा जा सकता है कि पूजा का अर्थ बाह्य कर्म-काण्ड से लिया जायेगा, जिसमें कि प्राण प्रतिष्ठित मूर्ति अथवा मन्त्र पर शास्त्रोक्त पद्धति द्वारा पूजन किया जाय। जप का अर्थ यह मानेंगे कि अधिकार-प्राप्त साधकों द्वारा शास्त्र-प्रामाणिक मन्त्र का जप मानसिक अथवा उपांशु (बिना ध्वनि/जिह्वा हिलाकर) जप किया जाय। पाठ का अर्थ माना जायेगा अधिकार-प्राप्त साधकों द्वारा स्तोत्र/स्तुति, नामावली आदि का उच्चारण सहित स्पष्ट ध्वनिपूर्वक पाठ किया जाना।

आधुनिकता के इस दौर में बुद्धिजीवियों के एक बड़े वर्ग में ध्यान के प्रति अभिरुचि व रुझान की कुलीन सोच ने जन्म लिया है। ध्यान 'पैशन' बन गया है, जबकि ध्यान के मूल में शास्त्रानुसार निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म का ध्यान उर्ध्वगामी, वैराग्य उत्पन्न करने वाला है और इन्हीं कारणों से गृहस्थों के लिए इसे निषेध माना गया है। इस प्रकार के ध्यान नियमानुसार पतञ्जलि *योगसूत्र* द्वारा प्रतिपादित हठयोग क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि शृङ्खला में क्रमशः ही किये जाने की व्यवस्था की गई है। सगुण एवं साकार रूप में ध्यान किया जाना वैराग्य एवं रिक्ति पैदा करने वाला नहीं है। अतः इसका गृहस्थों के लिए निषेध नहीं है, परन्तु इस प्रकार के ध्यान के सभी प्रभावशाली स्वरूप उपर्युक्त वर्णित जप में स्वतः आच्छादित हो जाते हैं, क्योंकि जप के साथ मन्त्र के देवता का ध्यान भी मन्त्र के विनियोग, न्यास के क्रम में पारिभाषित स्तोत्र के अनुसार ही किया जाता है।

उपासना (उप–आसन) का अर्थ भगवान् के निकट बैठना अथवा अवस्थित होना तथा बृहत् अर्थ में उपर्युक्त सभी को इंगित कर सकता है। साधना का अर्थ जैसे संगीत के क्षेत्र में लिया गया है, वैसे ही धर्म के विषय में भी अधिकार–प्राप्त व्यक्ति द्वारा समस्त शास्त्रविहित नियमों का पालन करते हुए जप, पाठ, पूजा एवं न्यास द्वारा निरन्तर नित्य एवं नैमित्तिक कर्म किया जाना है।

सनातन धर्मान्तर्गत उपासना के कुछ सामान्य परन्तु अटल सिद्धान्त

(1) साधना/उपासना नियमों के अधीन ही संचालित होती है न कि नियमों के ऊपर। इन नियमों के पात्र दो ही स्रोत हैं—प्रथम, गुरुमुख एवं गुरु परम्परा तथा द्वितीय, शास्त्रवचन। इन दोनों में भी प्रबलतम है गुरु–परम्परा। चूँकि पद्धतियों में भिन्नता एवं क्लिष्टता के कारण शीघ्रगम्य नहीं होती हैं, एवं सन्देह की प्रबल आशङ्का रहती है।

भावनोपनिषद् (रहस्य) में तो प्रारम्भ में ही स्पष्ट रूप से कहा गया है—

श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः।
तेन नवरन्ध्ररूपो देहः।।

अर्थात् उपासना में समस्त क्रियाओं की कारणभूता शक्ति 'श्री गुरु' है और उनके साथ नवरन्ध्ररूप देह अभिन्न है। अतः गुरु–वचन में पूर्ण–श्रद्धा एवं विश्वास परमावश्यक है। गुरुवचन में सन्देह की स्थिति साधक की नहीं होनी चाहिए। यही कारण है कि कोई भी व्यक्ति कितना भी ज्ञानी, बुद्धिमान् एवं तर्कशील क्यों न हो, उसे अपने ज्ञान, बुद्धि एवं तर्क के बल पर अपने विवेकानुसार उपासना के नियम सृजित करने अथवा उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन करने का अधिकार नहीं रहता है। वस्तुतः साधना की विषय–वस्तु तर्क एवं विवेक

पर आधारित नहीं है। तर्क एवं विवेक का आश्रय लेने से न केवल दिग्भ्रम उत्पन्न होगा अपितु साधना के मौलिक आधारों के अन्वेषण में अनावश्यक समय एवं ऊर्जा भी नष्ट होगी।

व्यक्तिगत मत जो तर्क एवं विवेचना के आधार पर बने हैं, अगणनीय हो सकते हैं, जिनमें सामञ्जस्य कर किसी एक निर्णय पर पहुँचना दुष्कर होगा, जबकि इसके सापेक्ष शास्त्र/गुरु के निर्देश न केवल एक मत होंगे, अपितु उनमें सावैभौमिक सत्यता भी होगी। उपासना की अनेकानेक पद्धतियाँ हैं, मत एवं मार्ग हैं तथा समाज का हर दूसरा व्यक्ति उपासना जैसे विषय पर परामर्श देने के लिए तत्पर रहता है। साथ ही समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में भी उपासना की विभिन्न पद्धतियों एवं मन्त्र बताये जाते हैं, जिनमें अधिकांश अप्रामाणिक होने के कारण गुरु परम्परा से प्राप्त निर्देश एवं शास्त्रों का मत ही एकमात्र विकल्प है, जबकि अशास्त्रीय उपासना किये जाने को हानिकारक पाया गया है।

(2) यह साधना पूर्णतया क्रियात्मक है एवं इसके बौद्धिक अथवा तार्किक दृष्टिकोण से तर्क का पक्ष मात्र इस सीमा तक उपयोगी है कि उपर्युक्तानुसार इसके नियमों को स्पष्ट कर सके। इसके अतिरिक्त उसमें विवाद का कोई स्थान नहीं है।

(3) उपासना में आस्था आवश्यक है। विश्वास एवं आस्था साधक की उपासना को सुगन्धित फूल की भाँति खिला देते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है कि विश्वास एवं आस्था के अभाव में उसकी उपासना निष्फल जायेगी। उपासना का क्रिया फल इतना अधिक बलिष्ठ है कि आस्था के अभाव में भी वह साधक को पूर्ण फल प्रदान करती है, लेकिन दृढ़तापूर्वक साधक नियम एवं विधि के अनुसार नियमित उपासना करता रहे।

साधक न्यूनतम आस्था के अभाव में साधना करेगा ही नहीं। यदि करेगा तो नियमित रूप से नहीं करेगा, और यदि नियमित रूप से करता भी है तो गुरु द्वारा आदेशित विधि को अपने विवेक एवं बुद्धि से परिवर्तित कर देगा। अत: यह बहुत ही जरूरी एवं अविकल्पित तथ्य है कि साधक को न्यूनतम आस्था के साथ साधना प्रारम्भ करनी चाहिए और यह प्रयास करना चाहिए कि वह गुरु आदेशित नियमों को किसी भी दशा में प्रश्नचिह्न न लगाये, स्वच्छ मन से निरन्तर उपासना करता रहे।

(4) ऊपर कई स्थानों पर अधिकार-प्राप्त साधक का वर्णन हुआ है। अधिकार से तात्पर्य यह है कि अमुक मन्त्र का जप अथवा अमुक स्तोत्र का पाठ अथवा उपासना/पूजन का स्पष्ट अधिकार शास्त्र के अनुसार किस साधक को प्राप्त होना चाहिए। उदाहरण स्वरूप वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रों हेतु दीक्षा अनिवार्य है, जबकि पौराणिक मन्त्र एवं पाठ बिना दीक्षा के भी किये जा सकते हैं। उसी प्रकार साधक का खान-पान अर्थात् शाकाहारी/मांसाहारी आदि भी निश्चित करता है एवं वर्णाश्रमादि भी योग्यता का एक मापदण्ड है, तथा उसकी वैचारिक अवस्था एवं धर्म के प्रति आस्था तथा क्रियावस्था भी यह निर्धारित करती है कि वह किस प्रकार के जप, पाठ एवं पूजा का अधिकारी है। शिक्षण पद्धति में ही छात्र की योग्यता के मूल्यांकन के उपरान्त ही कक्षा में प्रवेश मिलता है, तब असाधारण ऐहिक तथा पारलौकिक साधनों को सामान्य रूप से ही

प्रदान करने वाली उपासना पद्धति में अधिकारी-अनधिकारी का विचार तो अपरिहार्य है, वैदिक ज्ञान के सम्बन्ध में भी प्राप्त होता है—

यमेव विद्या: शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपन्नम्।
यस्ते न द्रुह्येत् कतमच्चनाह तस्मै या ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।। — *ऋग्वेद भाष्य भूमिका*

अधिकार की सोच अधिक बुद्धिजीवी एवं पढ़े-लिखे तथा अभिजात वर्ग के बीच इस प्रकार है कि अमुक मन्त्र का पाठ एवं पूजा कर अधिकार प्राप्त न होने को वे अपमानजनक महसूस करते हैं, जबकि उपासना में अधिकार विषय बेहद संवेदनशील एवं महत्त्वपूर्ण है, जिसके दृष्टिगत अधिकार प्राप्त हुए बिना कोई भी उपासना नहीं की जानी चाहिए। साधक के लिए यह जानना भी परम आवश्यक है कि जिन उपासनाओं में दीक्षा आवश्यक नहीं है उनके प्रभाव में उन उपासनाओं के सापेक्ष जिनमें दीक्षा अनिवार्य है थोड़ी भी न्यूनता नहीं है। अत: बिना अधिकार प्राप्त किये अमुक उपासना करने का हठ व्यर्थ में समय की हानि करना है, क्योंकि बिना अधिकार प्राप्त लोगों की उपासना निश्चित रूप से हानिकारक होती है। उपासना के इस मर्म को गम्भीरता एवं गहराई के साथ अनुभव किया जाना चाहिए।

(5) उपासना के लिए समयावधि को लेकर कतिपय शङ्कायें व प्रश्न हो सकते हैं। इस स्थिति को कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है कि एक ही वस्तु के विभिन्न प्रकार एवं उसी के अनुरूप उनकी कीमत कम या अधिक हो सकती है, जिसे व्यक्ति अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार ही क्रय करता है। ठीक इसी प्रकार साधना भी कम या अधिक समय की हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप साधना या उपासना के लिए कितना समय निकाल सकते हैं। साधना 50 मिनट की हो या 5 मिनट की, सच्चाई तो यही है कि साधक को उतने समय की ही उपासना की सलाह दी जानी चाहिए जितनी की वह प्रतिदिन निभा सके एवं नित्यकर्म की भाँति (महिलाओं के अशुद्धि के दिनों के अपवाद को छोड़कर) उसका निर्वहन भी किया जाना चाहिए, जैसे शौच, स्नान एवं अन्य नित्य-कर्म। अस्वस्थता, यात्रा आदि में इसे स्थगित/शिथिल भी किया जा सकता है, परन्तु वांछनीय होगा कि हम जिस प्रकार अन्य नित्यकर्मों का निर्वहन ऐसे आकस्मिक अवसरों पर करते हैं, वैसे ही उपासना का भी नित्यकर्म की भाँति निर्वहन किया जाना चाहिए।

(6) लेखक के व्यक्तिगत अनुभव में यह पाया गया है कि अधिकांश उपासक भ्रान्तिवश अनेकानेक इष्ट देवी/देवताओं की उपासना करते हैं। इससे उपासना के फल का ह्रास होता है एवं उनकी उपासना की ऊर्जा एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो पाती। अत: रुचि एवं गुरु के आदेशानुसार एक ही इष्ट अङ्ग, उपाङ्ग सहित की उपासना की जानी चाहिए और इस सीमित उपासना को ही घनीभूत करने का प्रयास करना चाहिए, न कि उपासना का विस्तार अनेकानेक इष्टों में करना। जो साधक वर्षों से अनेकानेक इष्टों की उपासना करते आ रहे हैं, वे भावनावश विवश हो जाते हैं और कई वर्षों तक वे इस फैलाव को समेट नहीं पाते। उपासना का प्रभाव सबसे तीव्र तब देखा गया है जब वह एक इष्ट देवता की अङ्ग-प्रत्यङ्ग सहित की जाये यह अनुभवजन्य भी है।

निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म सर्वप्रथम सगुण एवं साकार रूप में प्रकट होता है तथा इस प्रकट की विभिन्न किरणें/रश्मियाँ विभिन्न देवी-देवताओं का स्वरूप होती हैं। अत: साधक को अपने इष्ट देवता को सीमित रखते हुए उसमें सभी देवी-देवताओं की कल्पना करनी चाहिए और सभी को उस व्यक्त ब्रह्म का ही स्वरूप मानना चाहिए।

(7) **उपासना के कुछ मूलभूत सिद्धान्त**—कमर के नीचे के सूती वस्त्र उतारते ही अशुद्ध माने जाते हैं। अत: उन्हें गर्मी के मौसम में शुद्ध रेशम तथा जाड़े के मौसम में शुद्ध ऊन के होने चाहिए। कमर से ऊपर का वस्त्र सूती हो सकता है परन्तु श्रेयस्कर यह होगा कि पूजा के समस्त वस्त्र ऊनी/रेशम के कपड़ों के हों। इसी प्रकार पूजा का आसन मात्र साधक द्वारा अकेले ही प्रयोग किया जाय। उसके परिवार तक के सदस्यों द्वारा उसे प्रयोग किया जाना निषिद्ध है। पुरुष साधकों के लिए कुश/ऊनी आसन सर्वश्रेष्ठ माना गया है तथा स्त्रियों के लिए उपर्युक्तानुसार कुश आसन छोड़कर ऊनी आसन ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि स्त्रियों के लिए कुश का आसन निषिद्ध है।

पूजा का स्थान निर्मित भवन के ईशान कोण अर्थात् उत्तरी-पूर्वी कोने में ही होना चाहिए एवं उपासना के समय साधक का मुख उत्तर या पूर्व किसी भी दिशा में हो सकता है।

गोल स्फटिक के दानों वाली माला जिसमें प्रत्येक दानों के बीच में गाँठ पड़ी हो (दाने आपस में न टकरायें) को रेशम की गोमुखी के भीतर रखकर जप किया जाना चाहिए तथा एक से अधिक माला का जप किये जाने की दशा में सुमेरु (108वें दाने) का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए, अर्थात् माला का जप करके उसी क्रम में वापस आ जाना चाहिये। जप की माला को किसी भी दशा में धारण करना निषिद्ध है, तथा धारण की जाने वाली माला से किसी भी दशा में जप नहीं किया जायेगा।

मुख्यत: जप के तीन भेद हैं—पहला, वाचिक अर्थात् ध्वनि के साथ उच्चारण; दूसरा, उपांशु में बिना ध्वनि के ओंठ एवं जिह्वा हिलाकर; एवं तीसरा, मानसिक अर्थात् ध्वनि न हो तथा ओंठ एवं जिह्वा न हिले। पाठ को केवल वाचक विधि से ही किया जाना शास्त्रविहित है तथा जप के लिए उपांशु अथवा मानसिक विधि शास्त्रविहित है। समस्त उपासना आसन पर ही की जानी चाहिए और आसन से पृथक् चलते, फिरते एवं लेटने की स्थिति में मानसिक जप अनुमन्य है (वह भी कुछ संवेदनशील मन्त्रों को छोड़कर)।

(8) भोजन के समान उपासना भी—राजसी, तामसी एवं सात्त्विक—तीन प्रकार की होती है। गृहस्थों के लिए तामसी उपासना पूर्णतया निषिद्ध है एवं शेष राजसी एवं सात्त्विक उपासना होनी चाहिए। यह देखा गया है कि ज्ञान के अभाव में जो साधक पूर्णतया सात्त्विक उपासना करते हैं उनकी आध्यात्मिक प्रगति होती है, परन्तु लेखक की दृष्टि में वह भिन्न-भिन्न प्रकार के भौतिक कष्ट का कारण भी होती है।

(9) जैसाकि ऊपर कहा गया है, निर्गुण व निराकार का ध्यान सगुण-साकार की अपेक्षा दुष्कर है। बड़े-बड़े साधु-सन्तों ने भी साकार स्वरूप ब्रह्म का ही ध्यान किया है। इस प्रकार के ध्यान को सुमिरन

(स्मरण का अपभ्रंश) भी कहा जाता है, तथा उसी का औपचारिक एवं व्यवस्थित रूप जप है और यही गृहस्थों के लिए उचित है।

(10) भक्ति, ज्ञान और कर्म आदि कई मार्ग उपासना के बताये गये हैं। यह कहना उचित होगा उनमें भक्ति एवं ज्ञान ही अन्ततोगत्वा उपासना का अन्तिम परिणाम है। भक्ति एवं ज्ञान का मार्ग ज्यादा कठिन है, इसलिये इसे उचित नहीं कहा जायेगा। जबकि इसके सापेक्ष कर्म के जो मार्ग हैं, यथा—जप, पाठ एवं पूजा का अनुसरण करना अधिक उपयुक्त, व्यावहारिक एवं फलदायी हैं बशर्ते यह कर्म शास्त्रसम्मत एवं गुरु-मुखप्राप्त पद्धति द्वारा किया जाय और यही वास्तविक अर्थ में गीता का कर्मयोग है। इस नियम के अनुसार कर्म योग करते हुए भक्ति एवं ज्ञान की पारस्परिक वृद्धि निश्चित रूप से साधक में शनै:शनै: परिलक्षित होने लगती है।

(11) आधुनिक समय के गुरु जिन्हें हम सभी आधुनिक सुख-सुविधाओं से लैस हाईप्रोफाइल गुरु भी कह सकते हैं और अधिकांशतया टी.वी. आदि पर देखे जाते हैं, उनसे विशेष रूप से बचने की जरूरत है। ऐसे गुरु सनातन-धर्म के मूल सिद्धान्तों के पूर्णतया विपरीत दीक्षादि देतेहैं। मात्र एक उदाहरणस्वरूप सामूहिक दीक्षा जैसी चीज सनातन धर्म में नहीं है, क्योंकि दीक्षा एक अत्यन्त निजी/व्यक्तिगत गुरु एवं शिष्य के बीच की क्रिया से सम्बन्धित है, जबकि सामूहिक दीक्षा का न कोई अर्थ है और न ही उसका कहीं सनातन धर्म में कोई अस्तित्व ही है।

(12) व्यक्ति जो भी वर्तमान में शुभाशुभ फल भोगता है उसका कारण पुनर्जन्म सिद्धान्त के अनुसार पूर्व के हजारों जन्मों में किये गये कर्मो का स्वरूप होता है। यह विषय विवाद एवं तर्कादि का हो सकता है, परन्तु साधक को उसमें अपना समय एवं ऊर्जा नष्ट न करते हुए यह स्वीकार करना चाहिए कि पूर्वजन्मों के प्रारब्धानुसार ही वर्तमान जन्म प्राप्त हुआ एवं उसके जो कष्ट हैं, वे उसके द्वारा पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों के प्रसूतजन्य परिणाम हैं जिनके शमन का एकमात्र विकल्प यही है कि वह शुद्ध साधना/उपासना के मार्ग का अनुगमन करे जिससे कष्टों की तीव्रता में कमी आ सके। उपासना की इस क्रिया में जितनी तीव्रता एवं गहनता होगी, उतनी ही तीव्रता एवं गहनता के साथ कष्टों का निवारण भी हो सकेगाऔर यहाँ तक कष्ट समाप्त भी हो सकेंगे। साधना या उपासना का प्रतिफल इस बात पर निर्भर करता है कि यह क्रिया कितनी तीव्रता एवं सघनता एवं समर्पण के साथ संपादित की जा रही है।

अन्तिम रूप से इस बात पर बल देना अति आवश्यक है कि हिन्दू उपासना में रुचि रखने वाले साधक को इस समय अध्ययन से बचाए अर्थात् उपासना का ज्ञान पक्ष तर्क एवं दर्शन का मात्र आनन्द के प्रयोजनार्थ अध्ययन किया जा सकता है परन्तु उपासना के समय के मूल्य पर नहीं, अर्थात् उपासना का क्रिया पक्ष सर्वप्रधान एवं उच्चतम वरीयता का है, शेष दर्शन पर वाद-विवाद, मन्थन, शास्त्रों के अध्ययन से प्रारम्भ में साधक को निश्चित रूप से बचना चाहिए। यह विशेष रूप से उच्च स्तर के शिक्षा ग्रहण किये बुद्धिजीवी

साधकों के लिए है क्योंकि वे इस प्रकार के दर्शन की विवेचना आदि में अत्यधिक समय नष्ट करते हैं और उनकी उपासना एवं साधना इसके सापेक्ष गौण हो जाती है।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि भारतीय समाज में सभी व्यक्ति पूजा हेतु परामर्श देने के लिए उत्सुक रहते हैं एवं विभिन्न समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में भी मन्त्र प्रकाशित होते हैं। प्रश्न यह है कि मन्त्रों की प्रामाणिकता को किस प्रकार देखा जाना चाहिए। प्रत्येक मन्त्र का विनियोग एवं न्यास निर्धारित होता है। विनियोग के अन्तर्गत मन्त्र के द्रष्टा ऋषि, छन्द, बीज, कीलक, शक्ति एवं देवता को परिभाषित किया जाता है तथा देवता को परिभाषित करने वाले ध्यान का श्लोक भी होता है। इसी प्रकार न्यास में कर आदि एवं हृदय आदि न्यास सम्मिलित होते हैं।

(13) उपासना में किसी प्रकार की भी पूजा साधना के विषय में यह आम भ्रान्तियाँ हैं कि यह वृद्धावस्था अथवा वानप्रस्थ आश्रम हेतु उचित है। वास्तविकता यह है कि शुद्ध सात्त्विक उपासना तो वानप्रस्थ आश्रम के लिए ही उचित है परन्तु राजसी उपासना बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था आदि में अत्यन्त उपयोगी है।

यह भ्रांति भी है कि उपासना किन्हीं नियमों के अधीन नहीं है क्योंकि जो भी किया जाय वह भगवान् को प्रिय होगा। यह धारणा भी त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि बिना किसी विधि व नियम के भक्ति जैसे मार्ग तो उचित हैं, परन्तु कर्म के मार्ग नियम एवं विधि के पूर्णतया अधीन हैं।

हिन्दू उपासना में चमत्कारों एवं सिद्धियों को लेकर भी कुछ गलत धारणाएँ बनी हैं। चमत्कार एवं सिद्धियाँ पृथक् विषय है और यह साधक का लक्ष्य नहीं होना चाहिए, अपितु साधक को हर कीमत पर इनसे बचना चाहिये, क्योंकि शुद्ध साधना का चमत्कारों एवं सिद्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं है तथा अच्छे साधक के जीवन में छोटे-मोटे चमत्कार, जैसे मनोकामनाओं की पूर्ति का अनुभव होना दिखाई देता है। साधक की इच्छापूर्ति के दो उद्देश्य होते हैं—पहला, इच्छापूर्ति से उसका जीवन सुलभता से चलता है, जिससे वह निर्विघ्न उपासना में समय दे सकता है तथा दूसरा, इस प्रकार की इच्छापूर्ति होने से साधक के मन में उपासना एवं इष्ट देवता के प्रति श्रद्धा एवं आस्था का भाव सुदृढ़ होता है।

(14) कुछ स्थान एवं कुछ समय ऐसे होते हैं जिसमें की गयी उपासना का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। ऐसे संवेदनशील समय का उदाहरण है नवरात्रि, ग्रहणकाल, वर्ष की 4महारात्रियाँ (होली, जन्माष्टमी, दीपावली एवं महाशिवरात्रि) एवं मास की 4 महारात्रियाँ (पूर्णिमा, कृष्णाष्टमी, अमावस्या एवं कृष्ण चतुर्दशी)। इसी प्रकार संवेदनशील स्थानों के उदाहरण हैं—सिद्धपीठ, शक्तिपीठ, ज्योतिर्लिङ्ग, चारोंधाम, सन्तों की समाधि, गुरु का स्थान एवं उनका सान्निध्य आदि।

(15) तान्त्रिक उपासना का अर्थ—यह देखा गया है कि समाज में विशेषकर संकटकाल से गुजरते लोगों में तान्त्रिक एवं तान्त्रिक पूजा में अत्यधिक रुचि एवं आकर्षण जागृत् होता है। तान्त्रिक एवं तान्त्रिक पूजा के सम्बन्ध में निम्न भ्रान्तियाँ हैं—

1. तांत्रिक उपासना में मुख्यत: दो मार्ग प्रशस्त हैं—दक्षिण एवं वाममार्ग। आज समाज में तान्त्रिक उपासना को मात्र श्मशान घाट, शव, मांस, मदिरा आदि से जोड़कर देखा जाता है, यह मात्र अज्ञानता है। उपर्युक्त सभी अवयव वाममार्ग से सम्बन्धित है जबकि दक्षिणमार्ग तो पूर्णरूपेण सात्त्विक है।
2. तान्त्रिक उपासना को षट्कर्म से जोड़कर देखा जाता है, जो पूर्णतया गलत है। षट्कर्म अर्थात् मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन एवं विद्वेषण भी किसी भी पूजा पद्धति से (अर्थात् वैदिक, पौराणिक आदि) तथा किसी भी देवी-देवता के सम्बन्ध में किया जा सकता है और इनको ही मात्र तन्त्र का स्वरूप कहना भी गलत होगा।

तन्त्र का शुद्ध अर्थ एक ही है, और वह है, वह उपासना पद्धति जो वैदिक उपासना पद्धति में जन्म लेकर उसकी पृथक् धारा स्वरूप निकली हो, जिसे आगमशास्त्र भी कहते हैं तथा जिसका प्रमाण शिव मुखागम है अर्थात् जिसका स्रोत शिव-पार्वती संवाद है। वैदिक उपासना पद्धति से निकाल कर तान्त्रिक उपासना पद्धति सृजित किये जाने का संक्षिप्त उद्देश्य यह था कि कलियुग में वैदिक उपासना अनेकानेक शर्तों एवं नियमों के कारण कठिन होगी, जिसके सापेक्ष तान्त्रिक उपासना (दीक्षा तो उसमें भी अनिवार्य होगी) सुलभ एवं कलियुग में त्वरित फल देने वाली होगी। परन्तु शास्त्रों का आदेश है कि अग्निहोत्र, मौन, दान, यज्ञ ये चारों कर्म शास्त्रीयविधि के अनुसार करने से सभी प्रकार के भय दूर करके सुख-समृद्धि देने वाले हैं। शास्त्रीय विधि-विहीन कर्म ही विपरीत फल देने वाले होते हैं—

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि, भयं प्रयच्छन्त्ययथा कृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं, मानेन दत्तमुत मानयज्ञ:।।

अत: जनसामान्य को तान्त्रिक विशेषकर स्वत: घोषित तान्त्रिक से भ्रमित नहीं होना चाहिए अपितु यदि कोई तन्त्र विधि से पूजन होना हो तो उस तान्त्रिक गुरु परम्परा पूछी जानी चाहिए तथा तान्त्रिक अष्टाङ्ग से संकल्प की विधि पर भी प्रश्न किया जाना चाहिए (जिस प्रकार वैदिक एवं पौराणिक पूजा में पञ्चाग से संकल्प लिया जाता है)।

प्रस्तुत टिप्पणी, जैसाकि पूर्व में भी कहा गया है, साधक के मार्गदर्शन के लिए है, अत: इसके विषय में स्पष्टीकरण हेतु तो लेखक से पृच्छा की जा सकती है, परन्तु इस सम्बन्ध में वाद-विवाद एवं तर्क आदि हेतु कृपया सम्पर्क करने का कष्ट न करें।

कल्याणानन्दनाथ
के निर्देश में
गौतम

परशुरामकल्पसूत्र में दीक्षा का स्वरूप एवं महत्त्व

प्रभात कुमार राय

परं परस्थं गहनादनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहासु।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये।।[1]

भारतीय ज्ञान परम्परा की सभी शाखाओं में अपनी विशिष्टाताएँ भी निहित हैं। काव्य–साहित्य–दर्शन–विज्ञान–भाषा–व्याकरण–तन्त्र–आगम—ये सभी एक–दूसरे के पूरक होते हुए भी स्वयं में विशिष्ट हैं। आगम परम्परा का अपना एक वैशिष्ट्य है—दीक्षा। दो पद्धतियाँ ज्ञान प्राप्त करने की होती हैं—शिक्षा और दीक्षा। अन्य परम्पराओं जैसे—काव्य–साहित्य–दर्शन–विज्ञान–भाषा एवं व्याकरण का ज्ञान शिक्षा से प्राप्त हो सकता है क्योंकि ये अभ्यास की विषयवस्तु है इसलिए शिक्षा द्वारा उनका अनुशीलन करके उन–उन क्षेत्रों में परिपक्व हुआ जा सकता है किन्तु तन्त्रागम का क्षेत्र अनुभूतिमूलक है। अनुभव प्रधान होने के कारण यह साधना–परक है। इसीलिए हर एक ज्ञानपद्धति आगमिक सन्दर्भ में साधना का स्थान ले लेती है। यहाँ तक की भाषा भी मात्र व्यवहार या अध्ययन की विषयवस्तु न होकर साधनामूलक हो जाती है।

साधना के अनेक आनुभूतिक स्तर मात्र शिक्षा से नहीं प्राप्त हो सकते हैं, इसीलिए ज्ञान का दूसरा माध्यम स्वीकृत है—दीक्षा। यह पद्धति तन्त्रागम मार्ग की अध्ययन प्रणाली को अन्य समानान्तर अध्ययन प्रणालियों से विशिष्ट बनाती है। निगमपरम्परा में शिक्षा पर बल दिया गया है जैसे *तैत्तिरीयोपनिषद्*—**शीक्षां व्याख्यास्याम: वर्ण: स्वर: मात्रा बलम् साम सन्तान:। इत्युक्त: शीक्षाध्याय:।**[2] श्रुतियों में दीक्षा शब्द भी आया है जैसे—**सत्यं बृहतऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति।**[3] किन्तु टीकाकारों ने इस दीक्षा शब्द का अर्थ प्रवीणता या निपुणता बताया है।[4] श्रुति परम्परा भाषा की शुद्धि पर निर्भर रही और इसीलिए वेदाङ्गों में चार तो पूर्णत: भाषा पर केन्द्रित हैं—शिक्षा, व्याकरण, छन्द और निरुक्त।

अन्य दर्शनों या ज्ञान परम्पराओं के लिए जो तथ्य विवादास्पद या समस्यामूलक होते हैं उनका आगमिक परम्परा में समाधान हो जाता है क्योंकि विश्व को देखने का दृष्टिकोण ही अलग है। इसलिए *मालिनिविजयोत्तरतन्त्र* दीक्षा पद की व्याख्या करता है—

दीयते ज्ञानं सद्भाव: क्षीयन्ते पशुवासना:।
दानं क्षपणसंयुतो दीक्षा तेनेह कीर्तिता।।[5]

इसी प्रकार योगिनीतन्त्र दीक्षा पद की व्याख्या करता है—**'दीयते ज्ञानं अत्यन्तं क्षीयते सर्वं संशयम्।'** दीक्षा अज्ञान की निवृत्ति के लिए होती है क्योंकि अज्ञान भी दो प्रकार का होता है—बौद्ध और पौरुष। बौद्ध अज्ञान तो शिक्षा अर्थात् शास्त्राध्ययन से दूर हो जाता है किन्तु पौरुष अज्ञान की निवृत्ति के लिए दीक्षा आवश्यक है। और वह दीक्षा स्वयं शिव योजनारूपा होनी चाहिए। जैसाकि आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने इसे तन्त्रसार में बताया है—

हेयोपादेयनिश्चयपूर्वकत्वात् तत्त्वशुद्धिशिवयोजनाया रूपाया दीक्षाया इति।।[6]

अत: साधना पद्धति में दीक्षा का स्थान सर्वप्रथम है। इसी दीक्षा के स्वरूप एवं महत्त्व का प्रतिपादन *परशुरामकल्पसूत्र* के प्रथम खण्ड में ही किया गया है। यह ग्रन्थ श्रीविद्यासाधना का ग्रन्थ है और कौल साहित्य में परिगणित होता है। आचार्य रामेश्वर की *सौभाग्योदयवृत्ति* और उमानन्दनाथ का *नित्योत्सव* इसी कल्पसूत्र पर आधारित है। ये दोनों ही विद्वान् आचार्य भास्कराय की परम्परा में आते हैं, एक साक्षात् शिष्य हैं तो दूसरे प्रशिष्य। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण रानाडे कृत *सूत्रतत्त्वविमर्शिनी* वृत्ति और वर्तमानयुग में आचार्य परमहंस मिश्र कृत *नीरक्षीरविवेक* टीका एवं आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी की *कल्याणी* टीकाएँ उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ त्रिपुर रहस्य से उद्भूत है अत: त्रिपुरभैरवी की साधना पर केन्द्रित है। इसका उपदेश परशुराम को उनके गुरु अत्रिपुत्र दत्तात्रेय ने 18000 श्लोकों में दिया था जो वर्तमान में सूत्ररूप में उपलब्ध है जिसमें दो भाग हैं। पहले में दस खण्ड और दूसरे में आठ खण्ड और कुल सूत्रों की संख्या 460 है। आचार्य मृत्युंजय त्रिपाठी के शब्दों में "जिस प्रकार वेदकल्प की सहायता से यज्ञाराधन की पद्धतियों का विशदीकरण करता है उसी प्रकार यह कल्पसूत्र आगममार्गी सिद्धान्त एवं उपासना रहस्यों के निरूपण में पूर्णत: सक्षम है।"[7]

दीक्षा पर चर्चा करना मात्र साधना ही नहीं अपितु साधना के अधिकारित्व की चर्चा करना भी इसका उद्देश्य है। जो दीक्षित हैं या दीक्षा के इच्छुक हैं वे ही आगमिक परम्परा का निर्वहन करते हैं। अत: कल्पसूत्र का प्रथम खण्ड अधिकारित्व की भी चर्चा करता है। इस खण्ड का सम्यक् अध्ययन करने से के. दामोदरन एवं देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय जैसे विद्वानों को आगमिक समाज से सम्बन्धित जो भ्रान्तियाँ हुई थीं उनका भी निराकरण हो जाता है।[8] प्रथमखण्ड का पहला ही सूत्र नैरन्तर्य और अधिकारवाचक है—**अथातो दीक्षां व्याख्यास्याम:।***

दीक्षा की प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रमाणों या ग्रन्थों की चर्चा की जाती है क्योंकि प्रथम कार्य बौद्ध अज्ञान का नाश होता है। आगमिक परम्परा भेद को तो मानती है किन्तु उसमें विरोध को नहीं स्वीकार करती है। इसीलिए प्रमाणों की चर्चा में भी कल्पसूत्रकार सम्पूर्ण ज्ञान परम्परा को ही प्रमाणस्वरूप स्वीकारते हैं—**भगवान् परमशिवभट्टारक: श्रुत्याद्यष्टादशविद्या: सर्वाणि दर्शनानि लीलया तत् तदवस्थाऽऽपन्न: प्रणीय, संविन्मय्या भगवत्या भैरव्या स्वात्माभिन्नया पृष्ट: पञ्चभि: मुखै: पञ्चाम्नायान् परमार्थसारभूतान् प्रणनाय।।*** अत: मात्र आगमों को ही नहीं अपितु निगमों, अष्टादश विद्यास्थानों और सभी दर्शनों को उस

परमशिवभट्टारक के ही लीला द्वारा समुद्भूत जानना, यही साधक की प्रमाण दीक्षा है। व्यक्त को जाने बिना अव्यक्त को नहीं जाना जा सकता है अत: साधक को विश्व का ज्ञान कराया जाता है। सूत्र है—**षट्त्रिंशत्तत्वानि विश्वम्।।*** क्या यह अव्यक्त से भिन्न होकर व्यक्त है? आगम ऐसा नहीं मानते। तन्त्रागम परम्परा के अनुसार स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।[9] यही आभासवाद है। अत: सभी तत्त्व शिवरूप हैं किन्तु उन-उन तत्त्वों की प्रधानता होने के कारण वे उस रूप में व्यक्त हैं अत: प्रत्येक तत्त्व शिवमय है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसी अनुभूति को एक प्राकृत गाथा के माध्यम से बताया है—'**नहि जहि फुरइ सो सअलउ परमेसरु भासइ मइ अमलउ।।**'[10]

साधक को स्वयं की स्थिति भी जाननी होती है क्योंकि अनुभूति तो साधक ही करता है। इसीलिए अगला सूत्र कहता है—**शरीर कञ्चुकित: शिवो जीवो निष्कञ्चुक: परशिव:।*** अत: माया और उसके पञ्चकञ्चुकों से आवृत शिव ही जीव हो जाता है, पति ही पशु का रूप ले लेता है। आगम कहता है—'**मनुष्यदेहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वरा:।**'

अत: चित् शक्ति और चित्त में भेद नहीं है क्योंकि 'चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्य संकोचिनी चित्तम्।'[11] इस रूप में विश्व को जो देखता है वही साधक सिद्ध हो पाता है। *विमर्शिनी* में आचार्य अभिनवगुप्त ने भी कहा है—**शरीरमेव घटाद्यपि वा ये षट्त्रिंशत्तत्त्वमयं। शिवरूपतया पश्यन्ति तेऽपि सिद्ध्यन्ति।।**

अत: साधक जो बद्ध है, जीव है, पाश से युक्त पशु/अणु है उससे मुक्त होकर पति या शिवरूप होना ही परमपुरुषार्थ है। यही स्वविमर्श है। इसीलिए अगले सूत्र में कहा—**स्वविमर्श: पुरुषार्थ:।***

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन पुरुषार्थों को प्राप्त करने के साधन तो यज्ञ-योग-श्रद्धा-ज्ञान हैं किन्तु स्वविमर्श का साधन शब्द है। वर्णात्मक होने के कारण सभी शब्द नित्य एवं मन्त्रस्वरूप हैं इसीलिए सभी वर्ण एवं शब्द साधना की विषयवस्तु हैं और उनमें अचिन्त्य शक्ति समाहित है—'**वर्णात्मका: नित्या: शब्दा: मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता।।**'* तन्त्र भी यही कहता है—'**मन्त्रा: वर्णात्मका: सर्वे सर्वे वर्णा: शिवात्मका:।।**' (*श्रीसर्ववीरभट्टारक तन्त्र*) (*प्रत्यभिज्ञाहृदयम्* में उद्धृत)।

और इन सबसे बढ़कर जो साधन और प्रमाण है वह है विश्वास और यह विश्वास आगमों पर, गुरूपदिष्ट वाक्यों पर और स्वानुभूति तीनों पर ही होना चाहिए। आस्था और श्रद्धा ही परिपक्व होकर विश्वास का रूप धारण करती है इसीलिए **बिनु विश्वास भगति नहीं**। अत: विश्वास सर्वोत्कृष्ट प्रमाण हैं—'**सम्प्रदायविश्वासाभ्यां सर्वसिद्धि:। विश्वासभूयिष्ठं प्रामाण्यम्।।**'* यह विश्वास सिद्धि की ओर ले जाता है। विश्वास से साक्षात् आज्ञाचक्र की सिद्धि होती है। **भावनादार्ढ्यादाज्ञासिद्धि:।।*** आज्ञाचक्र का स्वामी तो आत्मा ही है।

साधक के लिए देह ही देवालय है अत: देहस्थ देव की अर्चना से ही सिद्धि होती है। यही स्वविमर्श है जो आनन्दरूप ब्रह्म की गुप्त अर्चना से होता है—'**आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितं तस्याभिव्यञ्जका: पञ्चमकारा: तैरर्चनं गुप्त्या।।**'* और यह अर्चना शरीर-यज्ञ है जिसमें **सर्वं वेद्यं हव्यम् इन्द्रियाणि स्रुच:**

शक्तयो: ज्वाला: स्वात्मा शिव: पावक: स्वयमेव होता।* अत: इस यज्ञ में हव्य, स्रुच, शक्ति, ज्वाला, पावक और होता सभी शरीर में हैं।

इसके बाद साधक के गुणों की दीक्षा है जो उसे लोक में प्रतिष्ठित करती है जो इस प्रकार है—**'सर्वदर्शनानिन्दा'*** क्योंकि सभी कुछ परमेश्वरमय है अत: निन्दा और द्वेष का स्थान कहाँ! यही समरसता और सहिष्णुता है। साधक को निरन्तर विद्या प्राप्ति की ओर अग्रसर रहना चाहिए **सदाविद्यानुसेहति*** और दुर्गुणों से वर्जित होना चाहिए—**'कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याविहितहिंसास्तेयलोकविद्विष्टवर्जनम्।।'*** उसे अपरिग्रही होना चाहिए—**सर्वत्रनिष्परिग्रहता।*** इन गुणों से साधक—**सततं शिवतासमावेश:*** की अनुभूति करता है। साधक को एक गुरुवाला और उसके कथनों में विश्वास होना चाहिए—**'एकगुरूपास्तिरसंशय:।'*** जब विश्वास होता है तो फल की चिन्ता नहीं होती इसीलिए साधक को यह भी उपदेश है—**फलं त्यक्त्वा कर्मकरणम्।।*** साधक का एक गुण है—**निर्भयता सर्वत्र।*** यह भी एक सिद्धि ही है जो कि साधना पद्धति के क्षेत्र को व्यापक आयाम प्रदान करती है। अभय एक ऐसा पद जो महर्षि विश्वामित्र से होता हुआ महात्मा बुद्ध–महावीर–आचार्य शङ्कर के चरित्र को दृढ़ करता है और यही नहीं अपितु सन्त कवियों गोरख–कबीर–नानक–मीरा–रैदास से होता हुआ तुलसी को भी लोक में बल प्रदान करता है।

जब कबीर कहते हैं—'कबीरनिर्भय राम जप' या तुलसी फटकराते हैं 'तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जब बीच' या जब मीरा निर्भय होकर विष का प्याला पी लेती हैं तो हमें इसका ध्यान रखना चाहिए वे किस परम्परा में आते हैं। वे शिक्षित नहीं हुए हैं अपितु दीक्षित हुए हैं और इस दीक्षा ने ही उनको निर्भय बनाया है। निर्भय का अर्थ मात्र निडर होना नहीं अपितु पूर्णसमर्पण का भाव भी है। अत: इन सभी गुणों से युक्त मतिमान् को ही दीक्षित करना चाहिए **'तत्र सर्वथा मतिमान् दीक्षेत्।'*** अत: कबीर–सूर–तुलसी–मीरा–रैदास–नानक–गोरख शिक्षित नहीं किन्तु मतिमान् हैं।

त्रिक परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण दीक्षा के भी तीन प्रकार बताए गए हैं—**दीक्षास्तिस्र: शाक्ती शाम्भवी मान्त्री चेति। तत्र शाक्ती शक्तिप्रवेशनात् शाम्भवी चरणविन्यासात् मान्त्री मन्त्रोपदिष्ट्या सर्वाश्च कुर्यात्।।*** इसके आगे ग्रन्थ में सूत्रों में इन तीनों ही दीक्षाविधियों का वर्णन है जो कि गुरु से अध्ययन करने योग्य है। उनकी चर्चा हम मञ्च से नहीं कर सकते। हाँ इतना जरूर है शक्तिपात की प्रक्रिया जो आगमों में और तन्त्रों में वर्णित है वही दीक्षाओं का मूल उद्देश्य है। *परमार्थसार* में अभिनवगुप्त ने तीव्र शक्तिपात की चर्चा की है जो गुरु के स्पर्शमात्र से होता है। यही प्रक्रिया *परशुराम कल्पसूत्र* में भी वर्णित है जो—

परमार्थमार्गमेनं झटिति यथा गुरुमुखात् समभ्येति।
अतितीव्रशक्तिपातात् तदैवनिर्विघ्नमेव शिव:।। — (*परमार्थसार*–96)

इनको जानने के बाद यदि व्यक्ति उस क्षण को याद करे जब गङ्गा के घाट की सीढ़ियों पर कबीर छिपकर लेटे हुए हैं और अनभिज्ञ रामानन्द के चरणस्पर्शमात्र से वे दीक्षित हो जाते हैं, उन्हें मन्त्र मिल जाता

है और वे कहते हैं—'होई निषंग मगन ह्वै नाचौ लोभ मोह भ्रम छांड़ौ।' यही कबीर की स्पर्शदीक्षा है। अब क्या कबीर किसी अन्य परम्परा के प्रतीत होते हैं? आप देखिए कि दीक्षा का त्रिक उपायों के त्रिक से कितनी समानता रखता है? ये सभी प्रश्न आगे अध्ययन करने के लिए नए द्वार खोलते हैं, मार्ग प्रशस्त करते हैं, बाकी भगवान् की इच्छा।

सन्दर्भा:

1. *परमार्थसार*, अभिनवगुप्तपादप्रणीत, योगराजरचितवृत्ति, मंगलाचरण-संस्कृत मूल एवं हिन्दी रूपान्तरण सहित। सं. प्रो. नीलकण्ठ गुर्टू, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. *तैत्तिरीयोपनिषद्*, शीक्षावल्ली, (शाङ्करभाष्य संहिता) प्रकाशक, गीता प्रेस गोरखपुर।
3. *अथर्ववेद*, पृथिवीसूक्त, मन्त्र-1, सायणाचार्यकृत भाष्य संवलिता, हिन्दी भाषानुवाद सहिता, व्याख्या पं. रामस्वरूप गौड़, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी-2003
4. *अथर्ववेद संहिता*, उपर्युक्त।
5. *मालिनीविजयोत्तर* तन्त्र, (इसको तन्त्रालोक में आचार्य अभिनवगुप्त ने दीक्षा प्रसङ्ग में उल्लिखित किया है।)
6. तन्त्रसार, उपोद्घात, पौरुषाज्ञाननिवृत्तिप्रसङ्ग, भाष्यकार, डॉ. परमहंस मिश्र, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006
7. *श्रीपरशुराम कल्पसूत्रम्*, *रामेश्वरकृतवृत्तिसहितम्*, कल्याण हिन्दी टीकायुक्त। सम्पादक एवं टीकाकार आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी, चौखम्बासंस्कृत सिरिज, वाराणसी।
8. *हमारी परम्परा*, के. दामोदरन (भारतीय चिन्तन परम्परा) — पुल्सपब्लिशिंग हाउस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-35
9. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, क्षेमराज कृत, सूत्र सं. 3, *तत्त्वबोधिनी* हिन्दी व्याख्या सहिता, व्याख्याकार-डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी शास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, गोपालमंदिर लेन, वाराणसी, 221001
10. *तन्त्रसार*, अनुप्राय प्रसङ्ग में आचार्य अभिनवगुप्तपाद द्वारा उद्धृत, उपर्युक्त।
11. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, सूत्र सं. 5 उपर्युक्त।

✻. तारक चिह्न वाले सभी सूत्र परशुरामकल्पसूत्र के प्रथमखण्ड (दीक्षाविधि) के हैं।

मुख्यग्रन्थ — परशुराम कल्पसूत्र, भाग एक (रामेश्वरकृत वृत्ति सहितम्)

सम्पादक — ए. महादेव शास्त्री, बी.ए., निदेशक अड्यार पुस्तकालय, मद्रास।
प्रकाशक — बड़ौदा केन्द्रीय ग्रन्थालय, 1923

विशिष्ट संस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

The concepts of *Devimāna Gaṇanam*.

Smt. Geetha Padmanabhan.

If human life is a journey through time, what lies at the end of the journey for mankind? In a life span bound by the limitation of *kāla*, what should be the direction of a true seeker desirous of *Mukti*? If *kāla* is the limiting factor how does one cross the limitation of *kāla*? What is really this *kāla*? Can any one measure *kāla* , if so, how and as to what end? what is the role of *kālamāna* and *kālagaṇana* in *anuśṭānam* and *sādhanā*? *Śruti* states

'यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः'। *श्वेताश्वतरोपनिषद्*, 1-1,2,3

He, the creator is the one who creates and controls but He is beyond the limitation of Time." so says *Śvetāsvaropanishad*. himself

अनादि कालेति कालविशेषं कालसूक्ष्मं मानवस्य चिकीर्षा , अजरत्वं, अमरत्वं निर्जरत्वं संवीक्षणं इति।

Kāla is the substratum of all phases of creation, He is the Supreme Entity .

कालस्य द्विरूपं कालश्चाकालश्च । द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्च । अथ यः प्रागादित्यात् सोऽकालोऽकलः। अथ य आदित्याद्यः स कालः सकलः।

There are assuredly two forms of *Brahman*, Time and Timeless (*akāla*), Time without parts is *Ak āla.* But that which begins with the sun which has parts is the time and that is *Kāla*. Both Time and Space are eternal. No one can imagine the origin and limit of Time and Space. Space contains everything in which all happens . Time conditions and regulates generating growth and dissolution of every thing. Both time and space in their true sense are not perceived by our senses. Time is always with us.

At a basic level, every understanding of Time rests on human awareness of change, close up in daily life and farther off in the life of the cosmos. The Sun, the Moon making its continual journey across the sky, brings the predictable succession of day and night; months; and seasons , the years and everything else, while living creatures journey from birth to death. The religions of the world, ancient and modern alike, present a rich field for the exploration of time and add their own dimension to the question of Time. The interval between two "events" is called time.

The *Sanātana Dharma's* view of Time can be defined as the Vedic Time system. Here (Time) *Kāla* is not single-directional linear movement, like an arrow speeding from past to future but an unending recurring cyclic system with neither a definitive beginning nor an culminating end but only an ever recurring repetition. The definition of Time itself was quite advanced in Hindu Heritage. The Vedic concept talks of Rhythm or universal order which is manifested as Time. Time Rhythm emanates from the Lord *Śhivā's Damaru*, the creation from the tiniest atom to the vast expansive cosmos. Thus, *Kāla* (Time) synonymous to Lord *śhivā* in *sanātana dharma*. *Śivā* is *Mahakāla*— "verily Time of time"(*prakāsa)*. His consort *Mahakāli* personifies the energy of Time (*vimarśa*).

The regenerative aspect of Time in Vedic literature is further developed by *Śāstras* . In Hindu concept *Divine* is *Kālatīthitā*. The *Kālagaṇanā,* done on the basis of the movements of various heavenly bodies in the cosmos, is purely an astronomical science. *Kālamāna* and *Kālagaṇanā* are well defined in *Śruti* and *Smṛiti* and many ancient texts *Sūrya Siddhānta, Vākyakaraṇam, Drik karaṇam.*

कालः -----अखण्ड कालः ------ नित्यः।
कालः ----- कालकालः ----- खण्ड कालः ---- जन्य कालः।

All these chronology are from *vedānga- jyotiṣha*. Coming to the present 6 Manvantaras have gone by and now we are in the middle of 7th Manvantara and in that 28th Chatur Yuga**.**

संकल्पेन विना कर्म यत्किञ्चित् कुरुते जनः।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धमस्यार्धक्षयो भवेत्। — *परकल्प, 105*
संकल्पमूलो वै कामः यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।
व्रता नियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।— *मनुस्मृतिः द्वितीयोऽध्यायः*

All *Pancāñgas* are either Solar or Lunar or Lunisolar in their calandrics. All these Almanacs are to serve the concerned society in their day to day affairs, Vrata, Pūja, festivals etc. All *karm*ās in practical life begin with a *Samkalpa* be it religious or otherwise. All *Srauta Smārta Karm*ās begin with a *Samkalpa* based on *Pancāṅga. Pancāṅga, gaṇanam paThanam -anuśṭhanam* are all integral to the Indian way of life. *Tithi, Vāra, Nakṣatra, Yoga and Karaṇa* are the *Pancā anga* that are important to *Nitya samkalpa*.

There is another unique almanac which is lūnisolar and not entirely astronomical. Lunar movements as *Tithis* are important here, similarly solar days sunrise to sunrise evenly seen are counted as a day. *Kalpa ,Yuga, Parivritti, Samvatsara* - the year, month, week every aspect of normal almanac are here, but their scope is unique. This is a religious, equally a spiritual almanac, whose purpose is to help the committed devotee-*Sādhakā* in his chosen path of *Sādhana*. Thus, divine assumes the form of *kāla* to guide the *Sādhaka* to view the entire creation, *desa, kāla, vartamāna* and in turn *bhūta, bhava, bhāvi* as Her-self. This special *gaṇanā* based almanac is called *Devīmāna Aṣtāngam* .

This is based on *Śākta darsana.* Goddess *Ambā* is the central deity. Her *upāsana* is the chosen path and liberation is the ultimate aim. In other almanacs even though Time is divine, Time is *Karmānga,* directed towards desired action and its result. In *Devīmāna* Time is the divine Herself, the *Devisvarūpa* and that is the main focus of *Devīmāna Aṣtāngam*. She is the *Kālātīta* assuming the form of *Kāla*. *Saura* or *Chāndra*, *Bārhaspotya* and all other systems evolve around astronomical aspects. But, here the *Ghatika*, *Dina* and the *tithi* though linked to lunisolar movements, they are only circumbulating the Divine. The *Samvatsara* to *Parivṛitti*, *Yuga* and *kalpa* all are in no way bound by the lunisolar movements. *Sūrya, Candra, Nakṣatra* and *Grahas* are all forms of the divinity. In fact, they

are viewed as the *Kālātīta Divine* designing the very *Kāla.* As this is *Tantra* tradition, this entire *gaṇanā* is based on 36 *tatvas* . The origin of this tradition of *Devīmāna* is unfathomable. This *sādhana* is well known as *Brahmavidyā* and *Kundalinīyoga.* Mention of the *upāsana* is seen in Ṛgveda. References are found in *Parasurāma Kalpasūtra -Prathama khaṇḍa-Rāmeśvaraśūri Vyakhyā, Amrutānanda-Nātha's Saubhāgya Tantra-Prathamollāsa, Paramānanda Tantra- Caturthollāsa. Bhāskararāyamakhi's Saubhāgyabhāskara*, *Varivasyārahasya* , *Setubanda* - the *Prasthānatraya* of *Śākta Tantra* fame, is said to have practised and propagated this *anuṣṭhāna.*

The aim of life is freedom from suffering, eternal bliss, the *Sayujya-Moksha,* the ultimate liberation. Wherever , whenever a search arises *Āgama* and *Nigama* are the sources, the *Pramāṇas* to guide us. *Nigamas* are the *Śruti,* the *Vedas,* revealed by Lord Brahma. *Agama Tantrā*s are Lord *Śiva's* bountiful grace on mankind. They are in the form of dialogue between *Śiva* and *Devī.* In *Saundaryalahari* Śri *Śankara Bhagavatpāda* describes

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं, स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्॥ – *सौन्दर्यलहरी* 31

Among the Tantrās *Śrividyatantra* reigns supreme. In *Śāktamāna Tantra Devī* is the main central *Upāsanā Devatā.* The *Arādhanā* of *Stree Devatā* is ordained in *vedās.* In *Śāktam*, the Goddess is worshipped as *Bālā, Mātā, Kālī , Rajrajesvarī, Caṇḍi,* etc. Rarest of the rare can get *Śrividyā Mantra Dīkṣā* where seer, seeker, seen are one and the same, where *Guru, Vidyā, Devatā* are no different. *Śri vidyā* is *Brahmavidyā,* where the creation is *Śiva krīḍā. Śiva* is the *Prakāsa Śaktī, Devī the Vimarśa Śaktī.* The *spandana* in *acala, śānta svarūpa, nirguṇa kāraṇa brahman* is the *kārya, saguṇa brahma* begins the creation . "इच्छा मात्रं प्रभोः सृष्टिः"। *Sat* is *Chit, Chit* is *Sat,* the *Sundarīupāsanā Saccidānanda Upāsana.* This form of worship leads to liberation. '

स जयति महान् प्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृश्यते किमपि।
कथमिव तस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातुमुच्यते वेदे।
नैसर्गिका स्फुरता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति॥ *वरिवस्यारहस्य,* 1.34

The triune *Mantra, tantra, yantra* combined rigour is the vehicle to cross the ocean of *samsāra.* There are three forms of tradition *Vaidikī ie Samayācāra, Tāntrikī i.e. Kaulācāra, Misra or* the combined system. Whatever be the tradition the desired goal is *devisāyujyam.*

'परा चाप्यपरा गौरी तृतीया च परापरा। प्रथमाऽद्वैतभावस्था सर्वप्रचयगोचरा॥'

The daily practice of *Śrividyā* is prescribed in *Śrividyānityahnikam.* Day break begins with *Gurupādukā,* followed by *Raśmimālā* , proceeds to *Sandhyā* , *Pārāyaṇa, Pūja* and further. A *Sādhakā's* schedule for the day is well-defined, when well-adhered the disciplined *Sādhānā* lifts and merges the *Sādhaka* with Divine Mother. The *Samkalpa with Devīmāna gaṇanā* and *devīmāna Aṣṭāṅgam.* This *Sampradāya* is described in *Śubhagodaya* as,

अपि देवीमानकालगणनसंकल्पं संप्रदायम्।
भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपूः
पराकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणीकल्पिततनुं
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम्।— *सुभगोदयस्तुतिः 1*

The *Ṣaṭ pārayaṇa krama* is most important discipline of *Śrividyā* based *Kuṇdalini yoga.* In this *Gaṇanā* every *anga* is *Devi* Herself shinning. *Pancaṅgakrama* is based on Solar Lunar movements. *Devīmāna* is based on thirty-six *tatvas.* Days are Sunrise to sunrise as in *Pancāṅga,* Tithis with Lunar movements. Kalpa, Yuga, Parivritti, Vatsara, Dinam are all thirty-six cycle of *tatvas* while months, *Thiti, Dina, Kāla Nitya* follow the *thiti.* The weekdays are named after the *Navanāthās. Kalpa, Yuga, Parivritti, Vatsara, Dinam, Vāsara, Dina Nityā and Ghatikā* constitute the *Devīmāna Aṣhtāṅgam. Śri Amrutānandanātha* in his *Saubhāgyabhāskara* elaborates this.

अखण्डैकरसानन्दनिष्यन्दामृतरूपिणीम्।
चिन्मात्ररुपिणीं विद्यां वन्दे सानन्दरूपिणीम्॥1॥
अथ वक्ष्ये विस्तरेण पारायणविधिं परम्।

कालस्वरूपमज्ञात्वा सिद्धये यो जपेन्मनून् ।।2।।
कोटिकोटिजपेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ।
कालस्वरूपविज्ञानमहर्गणविधानतः ।।3।।
अष्टाङ्गक्रमसंप्राप्तिः नाल्पस्य तपसः फलम् ।
उच्यते प्रथमं तत्र सिद्धकाल्या अहर्गणः ।।4।।
अष्टाङ्गक्रमसंप्राप्तिः येन तात्कालिकी भवेत् ।
नभर्तुशरपक्षघ्ना गतवत्सरमिश्रिताः ।।5।।
नवाम्बरधरा युक्ता भवेयुः शकवत्सराः ।
सप्तभक्ते तु शुक्रादिः स्यात् प्रतीतावहर्गण : ।।6।। — *सौभाग्यतन्त्रम्* 101-6

३६ कल्पैः= १ महाकल्पः	३६ परिवृत्तयः = १ युगः	४ नवाहम् = १ मासः
३६ महायुगैः = १ कल्पः	३६ वर्षाणि = १ परिवृत्तिः	९ वासराः= १ नवाहम्
३६ युगैः = १ महायुगः	१६ मासाः = १ वर्षम्	३६ दिनानि = १ मासः

६० घटिकाः = १ दिनम् ।

Year	*Saura*	*Chandra*	*Devimāna*
1	365.15.31.15	*360*	*572*
Month	12	12+adik māsa once in	16
1		3years	
Days in a Month	29-32	28-30	36
Week	7	7	9
1			
Day	Sun rise to Sunrise	Sun rise to Sunrise	Sun rise to Sunrise
1			
Tithi	Moon's movements	Moon's movements	Tithi Nityā-30
16			Dina Nityā-30
			Kāla Nityā-16
Ghatikā	60	60	60
60			

The thirty six *Tatvas* mark a month where the *Divine Tithi Nityā Devis* who are none other the *Mahānityā* combine to form the year. The *Navanāthās* four times make the month. The *Dina* and *Kālā Nityā* are very special features added to *Devīmānam.* The calculations for both *Pancāṅga* and *Aṣṭāṅga* are based on *Kaliabda* the elapsed days of *Kali.* For 15/1/2016 *Makarasamkarānti* day the *AṣTānga Samkalpa gaṇana* will be as follows :--

अहर्गणम् १८,६८,९३७/७ = २,६६९९१, शेष Reminder ०, ०+१ = Friday, शुक्रवासरः।

उदयंपञ्चभिर्हृते१८६८९३७/५ =३,७३,७८७, शेष २,२+१=३ मालन्याख्यचकारोदयघटिका।

नवभिर्नववासराः। १८६८९३७/९ =२०७६५९. शेष ६, ६+१ = षं स्वभावानन्दनाथवासर।

षोडशभिः षोडशाख्या नित्याः पर्यायनामकाः।

काल नित्या ---१८६८९३७/१६ =१,१६,८०८. शेष ९, ९+१ = ९ लृं नित्या।

दिन नित्या :- १८६८९३७/३० =६२२९७. शेष २७, २७+१ = २८ इं नित्यक्लिन्ना।

तिथि चन्द्रकलेति --- षष् ऊं महावज्रेश्वरी।

तत्त्वदिनम्--१८६८९३७/३६ =५१९१४. शेष २७, २७+१ = २८ हं वह्नि।

मासः-- ५१९१४ / १६ = ३२४४ शेष १०, १०+१ = ११ एं नीलपताका।

तत्त्ववत्सरम्-- ३२४४ / ३६ = ९० शेष ४, ४+१ = ५ घं शुद्धविद्या।

तत्त्वपरिवृत्तिः-- ९० / ३६ = २. शेष १८, १८+१ = १९ दं चक्षुस् ।

तत्त्वयुगम् --२ / ३६ = ० शेष २, २ +१ = ३ खं सदाशिव।

१८६८७६९/३६ =५१९१०. शेष ९, ९+१ = १० खं।

नं घ्राणतत्वमहाकल्पं, दं चक्षुतत्त्वकल्पं, थं त्वक्तत्त्वमहायुगम् ।[1]

''स्वस्ति श्रीमदादिगुरोः परशिवस्याज्ञया प्रवर्तमानेन शाक्तमानेन षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकसकलप्रपञ्चसृष्टि-स्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहकारिण्याः पराशक्तेः उर्ध्वभ्रूविभ्रमे नं घ्राणतत्त्वमहाकल्पे, दं चक्षुस्तत्त्वकल्पे,

1. *सौभाग्य तन्त्रम्,* 1-9-16-2

थं त्वक्तत्त्वमहायुगे, खं सदाशिवतत्त्वयुगे, दं चक्षुस् तत्त्वपरिवृत्तौ, घं शुद्धविद्या तत्त्ववत्सरे, ऐं /पं भ्रामिणी ऋतौ, एं नीलपताका (नित्या मासे) / (ज्योत्स्ना/ सूक्ष्मामृता--कला मासे), ऊं महावज्रेश्वरी तिथिनित्या, (लृं नित्या) इं नित्यक्लिन्ना दिन नित्या, हं वह्नि तत्त्वदिने, षं स्वभावानन्दनाथवासरयुक्तायां, यं नक्षत्रे, दं यागे, अः करणे, मालिन्याख्या चकार घटिकोदये----''

This *Samkalpa* is self-evident. *Devīmāna Aṣṭāṅga gaṇanā* is practised in two ways *Lalitā and Kālikrama* . Here *Nityā, Vāsara, Māsa* differs in both the modes. *Nityā* and *Vāsara* are seperate for the two systems. *Māsa* has three different practises of *Nityā, Kalā - Amrutā and Sadāśiva. Devīmāna anuśthāna is done as caturāṅga, pancāṅga, aṣṭāṅga, daśāṅga, dvā daśāṅga, and Ṣodaśāṅga.* More prevalent is *Aṣṭāṅgakramam.*

The unique feature in the practice lies in the *bijākṣara* enjoined to every one of the *nāmas.* No one needs to elaborate the power and significance of the *Bijā*s. *Mantra Upāsanā* is by the grace of the *Divine.* A to Ṣa are the *Mantrabījās.* Their powers are beyond human cognition. They steady the S*ādhaka* in *Śivoham.*

चतुरङ्गं च पञ्चाङ्गम् अष्टाङ्गं द्वादशाङ्गकम्।
षोडशाङ्गं क्रमाज् ज्ञात्वा पारायणविधिर्भवेत् ॥ २.२

चतुरङ्गं क्रमम्-- तारत्रयं मूलविद्यां वर्ष–मास–दिन–उदयान्।

पञ्चाङ्गं क्रमम् -(मार्कण्डेयाद्युपासितः) -दिनतो वारतः पक्षमासतः षट्त्रिंशतावृतः।

अष्टाङ्गं क्रमम्--(भृगु)-- वाराश्च घटिकोश्चैव दिननित्या, वर्ष, मास, युगं, अन्ते परिवृत्तिरिति क्रमात् ।

द्वादशाङ्ग क्रमम्--वारं, घटिं, युगं, मासं, पक्षार्णं, तिथिनित्यकाम् , परिवृत्ति, महायुगं, पूर्णं शबलकं दिनं, महापरिवृत्तिश्च।

षोडशाङ्ग क्रमम् -- पूर्णं, सत्यं, शबलं, खर्वं, महापरिवृत्ति, परिवृत्ति ,महायुगं,

युगं, वर्षं, मासं, लघुमासकं, पक्षं, दिनं, तिथि,नित्या, वारं, घटिं, नक्षत्र,

योग, करण, विंशतिबीजसंख्येयं षोडशाङ्गस्य सर्वदा ।[2]

2. *सौभाग्य तन्त्रम्,* -2.-2-10

अक्षर	ललिताक्रमः	कालिक्रमः
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं	प्रकाशानन्दनाथः	प्रह्लादानन्दनाथः
ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः	विमर्शानन्दनाथः	सकलानन्दनाथः
कं खं गं घं ङं	आनन्दानन्दनाथः	कुमारानन्दनाथः
चं छं जं झं ञं	ज्ञानानन्दनाथः	वशिष्ठानन्दनाथः
टं ठं डं ढं णं	सत्यानन्दनाथः	क्रोधानन्दानाथः
तं थं दं धं नं	पूर्णानन्दनाथः	सुरानन्दनाथः
पं फं बं भं मं	स्वभावानन्दनाथः	ध्यानानन्दनाथः
यं रं लं वं शं	प्रतिभानन्दनाथः	बोधानन्दनाथः
षं सं हं ळं क्षं	सुभगानन्दनाथः	शुकानन्दनाथः

अं	शिवः
कं	शक्तिः
खं	सदाशिवः
गं	ईश्वरः
घं	शुद्धविद्या
ङं	माया
चं	कला
छं	अविद्या
जं	रागः

झं	कालः
ञं	नियतिः
टं	पुरुषः
ठं	प्रकृतिः
डं	अहंकारः
ढं	बुद्धिः
णं	मनस्
तं	श्रोत्रम्
थं	त्वक्

दं	चक्षुस्
धं	जिह्वा
नं	घ्राणम्
पं	वाक्
फं	पाणी
बं	पाद
भं	पायुः
मं	उपस्थ
यं	शब्दः

रं	स्पर्शम्
लं	रूपम्
वं	रसः
शं	गंधः
षं	आकाशम्
सं	वायुः
हं	वह्निः
ळं	जलम्
क्षं	पृथिवी

तिथि-(शुक्लपक्षे)	नित्या	नित्या	तिथि-(कृष्णपक्षे)
प्रथमा (शुक्लपक्षे)	कामेश्वरी	काली	अमावास्या (कृष्णपक्षे)
द्वितीया (शुक्लपक्षे)	भगमालिनी	कपालिनी	चतुर्दशी (कृष्णपक्षे)
तृतीया (शुक्लपक्षे)	नित्यक्लिन्ना	कुल्ला	त्रयोदशी (कृष्णपक्षे)
चतुर्थी (शुक्लपक्षे)	भेरुण्डा	कुरुकुल्ला	द्वादशी (कृष्णपक्षे)
पञ्चमी (शुक्लपक्षे)	वह्निवासिनी	विरोधिनी	एकादशी (कृष्णपक्षे)
षष्ठी (शुक्लपक्षे)	महावज्रेश्वरी	विप्रचित्ता	दशमी (कृष्णपक्षे)
सप्तमी (शुक्लपक्षे)	शिवदूती	उग्रा	नवमी (कृष्णपक्षे)
अष्टमी (शुक्लपक्षे)	त्वरिता	उग्रप्रमा	अष्टमी(कृष्णपक्षे)
नवमी (शुक्लपक्षे)	कुलसुन्दरी	दीप्ता	सप्तमी(कृष्णपक्षे)
दशमी (शुक्लपक्षे)	नित्या	नीला	षष्ठी (कृष्णपक्षे)
एकादशी (शुक्लपक्षे)	नीलपताका	घना	पञ्चमी (कृष्णपक्षे)
द्वादशी (शुक्लपक्षे)	विजया	बलाका	चतुर्थी (कृष्णपक्षे)
त्रयोदशी (शुक्लपक्षे)	सर्वमङ्गळा	मात्रा	तृतीया (कृष्णपक्षे)
चतुर्दशी (शुक्लपक्षे)	ज्वालामालिनी	मुद्रा	द्वितीया (कृष्णपक्षे)
पूर्णिमा (शुक्लपक्षे)	चित्रा	मिता	प्रथमा (कृष्णपक्षे)
	महानित्या	असिता	

प्रातः स्मरणं गुरोर्समर्पणम्।

प्रातः- नाथ-घटिका पारायणम्।

<u>नाथपारायणम्</u>

आमूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्तीं बिसतन्तुतनीयसीं देवीं ध्यात्वा, अग्निमण्डले तेजोमयं वाग्भवेश्वरी ध्यानम्।

ध्यानम्

अथ द्वितीयं वक्ष्येऽहं नाथपारायणं परम् ॥ ७॥

त्रितारादिकमुच्चार्य मूलविद्यादिकं ततः। मायां रमां चोक्तवर्णान् नवधा पृथगुच्चरेत् ॥
प्रकाशादिकमारभ्य सुभगान्तं क्रमात् ततः। मण्डलक्रमतो जाप्यं मासेषु चतुरावृतिः ॥[३]
प्रातर्मूलाधारगते कमले वह्निमण्डले।वाग्बीजरूपां नित्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम् ॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम् ।स्वेच्छागृहीतवपुषं युगनित्याक्षरात्मिकाम् ॥
घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीनथ ज्ञानमुद्राकरवरान् वाग्भवोपास्तितत्परान्।

— *श्रीविद्यानित्याह्निके*, पृ. 31

At dawn with *Mrigī Mudrā* on the *Sahasradala Kamala ,* the *kula Sahasrāram, Gurū* is meditated upon. The *Nāthapārayaṇa* and *Ghatikā* wakes up the coined *Kundali* in the *Akula Sahasrāra.* The nine exits and their collective *rūpa* is *Guru. Gurū* is none other than *Devī.*

Then in the noon *Tatvapārāyana.*

मध्याह्ने –तत्त्व पारायणम्

अनाहते सूर्यमण्डले रक्तवर्णे कामेश्वरी ध्यानम्
मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले। कामराजात्मिकां देवीं अर्ककोटिसमप्रभाम् ॥
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम्। परितश्चात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत् तत्त्वशक्तिभिः ॥
रक्तमाल्याम्भरालेपभूषाभिः परिवारिताम्। युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत् ॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डधराः शोणवपुर्धराः। हृत्पङ्कजे च ताः कामराजोस्तिपरायणाः ॥

— *श्रीविद्यानित्याह्निके*, पृ. 36

अथ पारायणं वक्ष्ये तत्त्वरूपं सप्तमम्। प्रोक्तं मध्याह्नसंध्यायां तद्गायत्रीजपोत्तरम् ॥
त्रितारान्ते मूलविद्यां दिनदित्यादिकं क्रमात्। प्रपठ्य मुख्यतत्त्वाख्यरूपिणी श्रीमहा वदेत् ॥
त्रिपुरान्ते सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि च। नत्यन्तमिति तत्त्वानां जपः प्रोक्तो दिने दिने ॥
शिवाद्यवनिपर्यन्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपकम्। दनार्णतत्त्वमारभ्य मणुलं क्रमतो जपेत् ॥
इति तत्त्वपरायणविधिः।

— *सौभाग्यतन्त्रम्*, 1.4

अनाहते सूर्यमण्डले रक्तवर्णे कामेश्वरी ध्यानम्।
मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले।

3. *सौभाग्य तन्त्रम्*, - 5-7,8,9

कामराजात्मिकां देवीम् अलक्तकुसुमारुणाम् ॥
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षु चापपाशाङ्कुशान्विताम्। स्वेच्छागृहीतवपुषां युगनित्याक्षरात्मिकाम् ॥
घटिकावरणोपेतां षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः। पुष्पबाणेक्षु कोदण्डधराश्शोणवपुर्दराः ॥
हृत्पङ्कजस्थिताः कामराजोपास्तिपरायणाः। गुरुरेव परा शक्तिः ईश्वरानुग्रहात्मिका ॥

It is clearly seen the noon *Tatva pārāyaṇa Anāhata cakram,* the mid point in the *kundalinī* comes alive. *Devimāna* month consists of 36 days and In *Tantra Śāstra* basic tatvas are 36. The *Pārāyaṇa* based on the 36 *Tatvas* are as special as that *Śāstra* itself. *Tatva pārāyaṇa Dhyāna* is concentrating on the *cakras,* the Supreme *Kundalinī yoga*. The first five *Tattvas Śhiva, Śakti, Sadāśiva, Īśvara* and *Śuddhavidyā* are the *Śuddha Tattvas* . The rest from *Māyā to Prithivī* are *Aśuddha Tattvas. Tattva pārāyaṇa* ensures that in all *Aśuddha malās* of the *māyās* are dissolved and proceed to *Śuddha* state and acheive the true the state. The very divine mother is prayed to everyday, all her 36 tatvas are who are also Herself only destroys the *Avidya of Māyā.*

सायं-- नित्यापारायणम्
सायमाज्ञा सरोजस्थचन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्। शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम् ॥
युगनित्याक्षरां देवीं घटिकावरणां पराम्। चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम् ॥
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च दधानाः स्मरेवक्त्रकाः। नित्याः षोडश चाज्ञायां सायंकाले तु संस्मरेत् ॥

— *श्रीविद्यानित्यह्निके*, पृ. 81

अथ पारायणं वक्ष्ये तिथिनित्याभिधं परम् ॥
द्वादशं चेति पूर्वात्तु सर्वसिद्धप्रदायकम्। तत्र प्रवृद्धतिथ्याया नित्यादिनद्वयो भवेत् ॥
क्षयतिथ्यास्तु तां नित्यां प्रजपेद् द्वितयं बुधः। दिनद्वयेऽप्येकनित्यातिथिवृद्धावितीरितम् ॥
एकस्मिन् दिवेस्वेषं नित्या युग्मं तिथिक्षयम्। नित्यापारायणमितिसर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥[४]
भ्रूमध्ये सोममण्डले शुद्धस्फटिकशङ्काश अमृतेश्वरी ध्यानम्।

Āgya cakram is the last gate way to be crossed in the *kundalini* to reach the *sahasrāra* by the committed. The sixteen *Nityās* are the *kalās* of *ŚriMātā* . The *nityās*, including *Lalitā*, are the 16 parts of the continuum of consciousness, The sixteen *nityās* counted as either fifteen or sixteen or thirty as *tithi* , *dina* or *kāla* still they all lead you down the path of the *Kundalinī* . They are identified as *jāgrat, swapna,*

4. *सौभाग्य तन्त्रम्* - 5-21-24

śuṣupti and *Turiyāvasthā*. Added to this four the *Nāma and Mantra pārāyaṇa* together drown the *Sādhaka* in Her effulgent splendour and merges him in Her.

या बीजरूपे मूलाधारे स्थिता, या आमूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्ती , या षट्चक्रमार्गे बिसतन्तु तनीयसी, या विद्युत्पुञ्जपिञ्जरा विवस्वदयुतप्रकाशा, या परशतसुधा- मयूख- शीतळ- तेजोदण्डरूपा, या मातृकाक्षररूपे विलसति, या बिन्दु, नादबीजरूपा, या सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी, या मानमातृमेयरूपिणी, या ज्ञानज्ञातृज्ञेयरूपिणी, या तत्त्वमयी, सा परचिति जननमरणबन्धमोचकारणीभूता ।

The *Devīmāna pārāyaṇakrama* is *Ṣatcakra rūpa Kundalinī-vidyā*. The Serpantine Power woken up from the *Akula sahasrāra Agni maṇdale Mūlādhāre* meditation at break of dawn on the effulgent *Vakbhaveśvarī,* the noon *niṣṭhā* in the *Hrdaya maṇdalam, ie* the *Sūrya maṇdalam* the *Anāhatacakra* the blood-red *Kāmeśvarī,* in the evening in the *Āgyācakra* in between the brows in *Soma maṇḍalam* in translucent colour pray to *Amruteśvarī*. Added to this the *ŚaktaSandhyā, Nāma, Mantra pārāyaṇa* breaks the three knots *Granthis Brahmā, Viṣṇu* and Rudra reaches the *Sādaka,* the determined devotee by raising on the fine thread inside lotus-stem to the *Kula Sahasrāra* the seat of the *Divine Śhiva* and *Śakti* merges him in them.

Devīmāna Gaṇanam is the most divine calendric system where Sun and the Moon are not the driving forces but they are driven by the divine force. *kāla* is verily the divine and *kālagaṇana* is form of the divine. This calendric system with the very special *mantra-bijākshara* combined *Gaṇana* system is only one of its kind in the Universe. This unique *kālagaṇana*, guides the *sādhakā* in his innercore and leads him to the state of *sāyujya*. This clearly shows *Guru, Mantra, Devata* and Self are non-dual. This is very vast and deep subject. Can any one fathom the unfathomable? It is trying to navigate the great ocean with a small peddle. It is an honest attempt and what we have is a small bird-eye view of the divine system.

45 (New) old
5th trust cross St. Mandavalli
P.O. CHENNAI 600028
Tamilnadu, India
M. 9444896406 / Tel. 044- 24952566

वैदिकसाहित्ये वाक्तत्त्वमीमांसा

भास्कररायः

वैदिकसन्दर्भे वाक्तत्त्वं बहुत्र विमर्शितम्। तत्र प्रयुक्तथ्यानां मीमांसा निबन्धेऽस्मिन् सारतः प्रस्तूयते—

वाक् ऋग्वेदे निरुक्ते च

"यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।"[1] संस्कृतवाङ्मये वाक्तत्त्वम् इत्यस्मिन् विषये वेदेषु, आगमेषु, उपनिषत्सु, पुराणेषु, महाभारतेऽपि च सविस्तरेण विवरणं प्राप्यते। वाक् हि सर्वस्य मूलम्। वैदिकवाङ्मये वाक्तत्त्वस्य विषये वर्णनं समुपलभ्यते। तद्यथा—***ऋग्वेदसंहितायां यजुर्वेदसंहितायां सामवेदसंहितायाम् अथर्ववेदसंहितायां*** वाक्तत्त्वं सूक्ष्मरूपेण वर्णितम्। ऋग्वेदे वाक्तत्त्वं शब्दतत्त्वं ब्रह्मतत्त्वञ्च शब्देन अभिधीयते। शब्दब्रह्मरूपा वाक् उपासनायाः विषय इति ऋग्वेदे प्राप्तम्। ऋग्वेदे वाक्/वाच् इति शब्दस्य प्रयोगं विभिन्नेषु स्थानेषु प्राप्यते। ऋक्संहितायां वाचः तथा शब्दस्य चतस्रः अवस्था प्राप्यन्ते। तत्र आद्यः तिस्रः अवस्थाः सूक्ष्मरूपेण वर्णिताः। अपरैका चावस्था स्थूलरूपेण वर्णिता। मानवाः सूक्ष्मत्रयस्य प्रकाशं कर्तुं न शक्नुवन्ति। केवलं चतुर्थावस्था मानवैः प्रकाश्यते।[2] ऋग्वेदे वाक् चत्त्वारि पदानि परिमिता।[3]

ऋग्वेदोक्ता इमाः सूक्ष्मावस्थाः ऋग्वेदोत्तरकाले आचार्यैः सूक्ष्मा-सूक्ष्मतरा-सूक्ष्मतमाभेदेन वर्णनं कृतम्। ऋग्वेदे कस्मिंश्चित् मन्त्रे वाचः स्वरूपं प्राप्यते। ऋग्वेदे दशममण्डले पञ्चविंशत्याधिकशततमे सूक्ते वाक्तत्त्वस्य आत्मविवेचनस्वरूपञ्च वर्णितम्। तत्र सच्चिदानन्दस्वरूपा परमात्मा देवता, ऋषिका वागम्भृणी, अष्टमन्त्राः सन्ति। वाक्सूक्तस्यापरं नाम देवीसूक्तमिति। वाकसूक्तं न केवल दार्शनिकमपि तु आध्यात्मिकं तत्त्वञ्च प्रकाशयति। अम्भृणऋषेः दुहिता वागिति। वागम्भृणीति तस्या नामान्तरम्। वाक् समग्रसृष्टेः अधिष्ठात्री देवी । सा च जगतः सृष्टि-स्थिति-संहारकारणभूता। जीवपरमात्मनोः मध्ये अभिन्नताप्रदर्शनाय सूक्तमिदं प्रवर्तते। तत्र वाक् रुद्र-वसुभ्यां सह चरति, आदित्य-विश्वदेवाभ्यां सह चरति, इन्द्राग्नी च धारयति।[4]

ततोऽपि सा अभिषिक्तस्य सोमस्य धारणकर्त्री, पूषाभगयोः धारणकर्त्री। सा च यजमायाय धनं धारयति। सा च सम्पूर्णं जगत् शास्ति। [5] मानवेषु वाचा अन्नरूपेण विराजमाना सा प्राणस्य धारणकर्त्री। मानवाः तत्र क्षियन्ति।[6]

वाक् ब्रह्मात्मकं भवति, तदिच्छानुसारं मनुष्याः वलवीर्यबुद्धिसम्पन्ना च भवन्ति।[7] स्तुतिविद्वेषगणान् मारितुं सा धनुषः वितनोति। सा आकाशात्पृथिवीं यावत् व्याप्ता।[8]

वाचो हि लोकानां शिरस्युपरि द्युलोकम् उत्पद्यते। वाचः मूलस्थानं समुद्रशीतलजलाभ्यन्तरे अस्ति। सा मूलाधारे स्थित्वा सकलभुवनानां सृष्टिम् अकरोत्। सा वायुरिव सर्वत्रैव विचरति, अतः सा सर्वव्यापिनी।[9] अतः यावत् ब्रह्मतत्त्वं व्याप्तं तावत्पर्यन्तं वाक्तत्त्वमपि च व्याप्तम्। अत्र ब्रह्म-वाक् इत्युभयोः मध्ये सादृश्यं परिक्ष्यते। वाकतत्त्वं न केवलं चेतनतत्त्वेषु परिगण्यते, अपि तु, अचेतनतत्त्वेऽपि वाक्तत्त्वस्य परिगणना भवति। वैदिककाले देवताभिः परमशक्त्या अलौकिकवाचः उत्पत्तिःजाता।[10] वाक् मानवस्थितभावनानां पूरयित्री। ऋग्वेदानुसारेण वाक् द्विरूपम् - व्यक्तम् अव्यक्तञ्च। वाचः व्यक्तरूपं केवलं मनुष्यैः वक्तुं शक्यते, न तु मानवेतरप्राणिनः वक्तुं शक्नुवन्ति। द्वितीयञ्च अव्यक्तरूपा वाक् कलं गवादिपशुभिः प्रकाश्यते।

चत्वारि पदानि इति पदेन ॐ, भूः, भुवः, स्व इत्यादीनि परिगण्यन्ते इति ऋषयः उक्तवन्तः।[11] किञ्च वैयाकरणैः चत्वारीतिपदेन नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपातानाश्च स्वीकृताः।[12] अतः व्याकरणशास्त्रे उच्यते यत् नामेत्यादि चत्वारि पदानि वाग्रूपब्रह्मणः प्राप्तानि। चत्वारः वेदाः नामेत्यादि विषयैः परिवृताः। नाम-आख्यात-उपसर्गाश्चेत्यादीनि पदानि बुद्धिगम्यानि सन्ति। तानि पदानि न तु सर्वैः ग्रहीतुं शक्यन्ते। साधारणैः प्रकृति-प्रत्ययानां च ज्ञानाभावे निपातस्य प्रयोगः क्रियते। याज्ञिकानां मते, मन्त्र-कल्प-ब्राह्मण-व्यवहारिकभेदेन वाणी पञ्चधा विभज्यते। सर्पाणां वाक्, वायसानां वाक् इति कैश्चित् मनीषिभिः स्वीक्रियते। वाचा पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोकश्चेति वाचः त्रिविधा चतुर्था व्यवहारिकी-तुरीयं चेति पशुभिः-मानवैश्च वक्तुं शक्यते। पृथिव्यां स्थिता वाणी अग्निरिति, अन्तरिक्षस्थिता वाणी वायुरिति, द्युलोकस्थिता वाणी च बृहतीति। तासु प्रथमा रथन्तरं साम, द्वितीया वामदेव्यं साम तृतीया बृहत्साम इति स्वीकृतम्। वेदज्ञः ब्राह्मणः केवलमेषां चतुर्णां वाचाम् अधिकारी भवति। निरुक्ते वाचः सप्तपञ्चाशत् नामानि प्राप्तानि।[13]

ऋग्वेदे वाक् इति सरस्वतीदेव्याः पर्यायवाची शब्दः। तत्र सरस्वतीति माध्यमिका वाक् इति निरुक्तकारेणाभिमतम्।[14] कुत्रचित् सरमा इति माध्यमिकवाग्रूपेणाभिधीयते। गमनार्थं सरमेति नाम स्वीकृतम्। ऐतिहासिकानां मते देवशुनी वाक्पदेनाभिधीयते। वागिति विद्युत्तुल्या भवति। यथा अन्तरिक्षे विद्युत् गर्जति तदा मानवः चित्ते भीतिमनुभवति। एवं मध्यमा-विद्युत्, माध्यमिका वाक् मानवानां हृत्सु अवस्थिता। सा पृथिवीमावृत्य प्रभासते। मानवानां हत्सु सा सूक्ष्मरूपेणा स्थिता।[15] मानवकल्याणाय वाक्तत्त्वं स्वस्वरूपम् उत्घाटयति। यथा कामपरवशा रमणी पत्युः सम्मुखे शरीरमनावृतं करोति।[16]

यजुर्वेदे वाक्तत्त्वम्

यजुर्वेदे वाक् समुद्रमिति संज्ञया अभिहिता। अत्र वाक् दुर्बोध्या, सर्वव्यापिनी, अजन्मा, अनन्तात्मिका चेति पदैः बोध्या।[17] सा संसारस्य कर्त्री भवति।

अथर्ववेदे वाक्तत्त्वम्

अथर्ववेदे वागिति परमेष्ठी प्रजापतिः। वाचः दैवसृष्टिः आसुरिकी च सृष्टिश्च भवतः।[18] त्रिपादीवाक् तत्र सर्वेषु स्थानेषु स्थिता। सा प्राणिनां जीवनस्याधारिका शक्तिर्भवति। ऋग्वेद इवात्र वाक् पशूनां जीवनं धारयति। अन्नानां परिपुष्टिः च वाचैव सम्भवति। शब्दोच्चारणाय प्रवृत्तस्य मनुष्यस्य प्रथममिच्छा हृद्युत्पद्यते, इच्छाजन्या च कृतिर्भवेत्। प्रयत्नेन मूलाधारे प्राणवायोः परिस्पन्दनेन सूक्ष्माया वाच उत्पत्तिर्भवति।[19]

ब्राह्मणग्रन्थेषु वाक्तत्त्वं यथा निरूपितं तदुच्यते—

ऐतरेयब्राह्मणे

"वाग् वै ब्रह्म।"[20] ऐतरेयब्राह्मणे वाक्तत्त्वं ब्रह्मस्वरूपमिति मन्ये। वाक्तत्त्वं सरस्वती (वाग्देवी) इति पदेनाभिधीयते। "वाक् तु सरस्वती"[21] वाक्तत्त्वम् अक्षयं अविनाशि च इत्युक्त्वा तस्य समुद्रतुल्यत्वमत्र स्वीकृतम्। यथा समुद्रः क्षयरहितः अविनाशी च भवति तथैव वाक्तत्त्वं भवति अक्षयम् अविनाशि च।[22] वागेव जगतः कारणम्। सृष्टि–स्थिति–संहारानाञ्च तत्र समाहारः। इयं वाक् परमब्रह्मस्वरूपिणी च भवति।

कौषितकिब्राह्मणे

ऐतरेयब्राह्मणमिव कौषितकिब्राह्मणेऽपि वर्णितं यत् वागिति सरस्वतीस्वरूपा। "वाग् वै सरस्वती।"[23] कौषितकिब्राह्मणे वागिति इन्द्रस्य पर्यायवाची शब्दः । अतः आम्नातं – "वाग् वा इन्द्रः"।[24]

शतपथब्राह्मणे

शतपथब्राह्मणे "विराट्" इति पदेन वाक्तत्त्वमभिधाय तस्य व्यापकत्वं च साध्यते। सा च वाक् जगत्प्रपञ्चस्य कारणभूता। जगत्यस्मिन् यत्किञ्चिदपि विद्यते तत्सर्वमपि वाच एव परिणामभूतम्। जगत्यस्मिन् वर्तमानाः स्मेऽपि पदार्था वाचा एव निर्मिता। अतः वाचैव सृष्टिः सञ्जाता। "वाचा हीदं सर्वकृतम्। वागेव सुपर्णा।"[25] वागेव सुपर्णी मायास्वरूपिणी। सुपर्णीति कथनेन वाग्रूपा माया ब्रह्माणम् आच्छादयित्वा जगतः सृष्टिं चकार। तत्र वाक् साक्षात् बुद्धिरूपा, मननयोग्या च ।[26] वाक्तत्त्वमधिगम्य मनुष्याः मोक्षस्वरूपमधिगच्छन्ति। सम्पूर्णः विश्वः विराजः व्याप्तरूपमस्तीति। वाक् अग्निरूपं च भवति। वाक् प्रकाशरूपं चास्ति। तया शब्दब्रह्मणः प्रकाशरूपता संभवति।[27] शतपथब्राह्मणे उक्तं यत् चत्वारः वेदाः वाचः प्रतिरूपभूताः। वाक्तत्त्वस्य सूक्ष्मरूपं सामवेदे वर्णितम्। सामवेदः हि वाक्तत्त्वस्य व्याख्यायितं रूपमस्ति।[28]

सामगीतस्य चत्वारः भेदाः सन्ति। ग्रामगेयगीतम्, आरण्यगीतम्, ऊहगीतम्, ऊह्यगीतं चेति । ग्रामगेयगीतस्यापरं नाम प्रकृतिगीतमिति, वेयगीतमिति वा। गीतमेतद् ग्रामेषु प्रचलितमस्ति। आरण्यगीतस्यापरं नाम रहस्यगीतमिति। एतद् छन्दसीत्यपि अभिधीयते। ऊहगीते गीतानां विस्तारेण वर्णनं कृतम्। ऊह्यगीतं सर्वत्र नैव गेयम्। साधारणस्थानेषु अस्य गानं निषिद्धमस्ति।

अङ्काः	स्वराः	वर्णाः
प्रथमः	मध्यमः	म्
द्वितीयः	गान्धारः	ग्
तृतीयः	ऋषभः	रे
चतुर्थः	षड्जः	स्
पञ्चमः	निषादः	नि
षष्ठः	धैवतः	ध्
सप्तमः	पञ्चमः	प्

तैत्तिरीयब्राह्मणे

तैत्तिरीयब्राह्मणे वाक्तत्त्वस्य चर्चा बहषु स्थानेषु दृश्यते। तत्र वागेव सरस्वती।[29] वाक्शक्तेः स्वरूपमत्र वर्णितम्। प्रजापतेः इच्छाशक्त्या "भू" शब्दात् पृथिवी, "भुवः" शब्दात् अन्तरिक्षश्च उत्पद्येते।

उपनिषत्सु वाक् विवेचनं यथा प्राप्यते तन्निरूप्यते—

छान्दोग्योपनिषदि

सनत्कुमारेण वाक्तत्त्वस्य विषये उक्तं यत् यदि सृष्टेः पूर्वं वाक्तत्त्वं न स्यात् तर्हि धर्माधर्मयोः मध्ये अभिन्नता न दृश्येत। नारदः सनत्कुमारं प्रपच्छ नामापेक्षया श्रेष्ठं किम्? तदुत्तरे सनत्कुमारः उवाच वाक् हि नाम्नः श्रेष्ठा। ऋग्वेदादयः चत्वारः वेदाः, देव-भूत-नक्षत्रादिविद्याः, स्वेदज-अण्डज-उद्भिज-जलजादि प्राणिनः, सत्य-असत्यं च, धर्म-अधर्मं च, साधु-असाधुः चेत्यादयः विषया वाच एव उत्पद्यन्ते। सर्वे पदार्था वाचः एव जाताः।

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीश्च श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिषान्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत् सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति।[30]

यः वाचः ब्रह्मैति उपासते, यावत्पर्यन्तं वाचः गतं तावत् पर्यन्तं सः गन्तुं शक्नोतीति।[31] अतः तदनन्तरं वाचो अपेक्षायाः मनः श्रेष्ठम्, मनोऽपेक्षा संकल्पः श्रेष्ठमिति प्रतिपाद्यते। वाक् पुरुषस्य रसोऽपि भवति।[32] वागेव ऋक्. साम प्राणः. ओमीति उद्गीथश्च भवति।[33]

केनोपनिषदि

ब्रह्मणः शक्तिस्वरूपं किमिति प्रश्नस्य उत्तरप्रसङ्गे वाचः सन्निवेशः। तदुक्तं यत् वागेव ब्रह्मणः शक्तिरस्ति। यदि मनुष्यानां मध्ये ब्रह्म न स्यात् तर्हि मनुष्याणाम् इन्द्रियाणि निष्क्रियाणि भवेयुः। ब्रह्मणः वाक् नाभ्युदिता, अपि तु वाचः ब्रह्मा उत्पद्यते।[34]

मुण्डकोपनिषदि

वेदस्यापरं नाम अपरा विद्या। यज्ञमनुष्ठानश्च अपराविद्यायाः भेदाः। यज्ञानुष्ठानाभ्याम् अदृष्टस्य अपवर्गस्य प्राप्तिर्भवेत्।[35] अक्षरब्रह्मणः रूपमन्नश्च जायते।[36] अक्षरब्रह्मणः विविधाः जीवाः उत्पद्यन्ते।[37] ब्रह्म प्राणस्वरूपं, वाक्स्वरूपं, मनस्वरूपश्च । ब्रह्म परमं सत्यमिति। वाक् प्राणः मनश्च तस्याश्रयभूता शक्तिरस्ति।[38]

माण्डुक्योपनिषदि

ओमिति ब्रह्मणः प्रतीकः। यथा शालग्रामशिलया विष्णुरुपास्यते तथैव ओमिति पदेन ब्रह्म उपास्यते। "ओमित्योतदक्षरमिदं सर्वम्"[39] ओम्-कारस्य चतस्रः मात्रा सन्ति। ता यथा अ-उ-म-अमात्र च पञ्चधा। आत्मनः पादेति ओम्-कारश्च मात्रा शब्देन विजानीयात्।[40]

बृहदारण्यकोपनिषदि

बृहदारण्यकोपनिषदि वाक् विद्युत्-रूपा। अन्तरिक्षे मेघगर्जनेन विद्युत् प्रकाशते। वाक् हि विद्युत्, वाचा वायुः प्रवहति, मेघः गर्जेनन जलं वर्षति। "यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत् स्तनयति यन्मेहति तत्त्वर्षति वागेवास्य वाक्।"[41] वेदानां-पुराणानां-लोकानाञ्च ज्ञानं वाचैव सम्भवति। वाचं विना केषाञ्चिदपि विषयाणां ज्ञानं पूर्णरूपेण न प्राप्तुं शक्यते।

वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्योनदुपासीत। का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य। वागेव सम्राडिति होवाच। वाचा वै सम्राड् बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्योति य एवं विद्वानेतदुपास्ते॥ [42]

श्वेताश्वेतरोपनिषदि

वाक्तत्त्वम् अक्षररूपमिति श्वेताश्वेतरोपनिषदि आम्नातम्। तत्र द्वावक्षरौ विद्येते, तौ ब्रह्म–परकाविति – जगतः क्षराक्षरं–व्यक्ताव्यक्तञ्चेति।[43] व्यक्तमिति प्रकृतेः विकारः कार्यरूपञ्च। अव्यक्तमिति कारणानां उपादानकारणम्, यद्धि कारणरूपमस्ति। व्यक्तं क्षरं विनाशि च। अव्यक्तञ्च अक्षरं अविनाशि। क्षरं प्रधानं अक्षरञ्च अमृतमिति।[44] यथा इन्धने अग्निः न दृश्यते। किन्तु इन्धने अग्निः सुप्तरूपेण स्थितः इन्धनस्य अग्निप्रज्वलनक्षमतास्ति। द्वयोः काष्ठखण्डयोः घर्षणेन अग्नेरुत्पत्तिः भवति। एवम् आत्मनि जपक्रियया ब्रह्मणः प्राप्तिर्भवेत्।[45]

गोपथोपनिषदि

गोपथोपनिषदि वाक् अग्निज्योतिःस्वरूपा। "या वाक् सोऽग्निः।"[46] श्वेताश्वेतर इव गोपथेऽपि वाक् इति अग्निस्वरूपा। "वाग् वै सरस्वती"।[47] एवं विविधं वाक्ततत्त्वविवेचनं वैदिकसाहित्ये सुनिरूपितमस्ति तत् सुधीभिर्विचारणीयम्।

सन्दर्भाः

1. ऋग्वेदे 10.114.8
2. वाक् वाचः कृत्स्नायाः पदानि चत्वारि परिमित, पारमितानि। लोके या वागन्ति सा चतुर्व्विधा विभक्तेत्यर्थः। तेषां मध्ये त्रीणि गुहा गुहायां निहिता स्थापितानि, नेङ्गयन्ति न चेष्टन्ते न प्रकाशन्ते इत्यर्थः। वाचः तुरीयं पदं मनुष्या अज्ञास्तज्ज्ञाश्च वदन्ति व्यक्तमुच्चारयन्ति व्यवहरन्ति। (1.164.45 सायणभाष्यं)

   चत्त्वारि वाचः परिमितानि पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मेधाविनो गुहायां त्रीणि निहितानि नार्थं वेदयन्ते, गुहा गूहतेः। तुरीय त्वरतेः। कतमानि तानि चत्त्वारि पदानि? ओंकारो महाव्याहृतयश्चेत्यार्षम्। नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः। मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणं चतुर्थी व्यावहारिकीति याज्ञिकाः ऋचो यजूंषि सामानि चतुर्थी व्यवहारिकीति नैरुक्ताः। सर्पाणां वाग्वयसा क्षुद्रस्य सरीसृपस्य चतुर्थी व्यवहारिकीत्येके। पशुषु तूणवेषु मृग्वेष्वात्मनि चेत्यात्मप्रवादाः (*निरुक्ते.* त्रयोदशोऽध्यायः)
3. चत्वारि वाक् परिमितानि पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
   गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचोमनुष्या वदन्ति॥ (*ऋग्वेदे*, 1.164.45)
4. अहं सूक्तस्य द्रष्टी वागम्भृणी यद् ब्रह्म जगत्कारणं तद्रूपा भवन्ती रुद्रेभिः रुद्रैरेकादशभिः। इत्थंभावे तृतीया। तदात्मना चरामि। एवं वसुभिः इत्यादौ तत्तदात्मना चरमीति योज्यम्। तथा ब्रह्मीभूता बिभर्मि धारयामि। इन्द्राग्नी अपि अहम् एव धारयामि। उमा उभौ अश्विनावपि अहम् एव धारयामि। मयि हि सर्वे जगच्छुक्तौ रजतमिवाद्यास्तं सग् दृश्यते। माया च जगदाकारेण विवर्तभेद। तादृश्या मायया आधारत्वेनासङ्गस्यापि ब्रह्मण उक्तस्य सर्वस्योत्पत्तिः (10.125.1 *सायणभाष्ये*)
5. अहं राष्ट्री संगमनी वसुनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
   तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् (*ऋग्वेदे* 10.125.3)

6. मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥ (*ऋग्वेदे* 10.125.4)
7. अह स्वयम् एव इदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदामि उपदिशामि। देवेभिः देवैरिन्द्रादिभिरपि जुष्टं सेवितम्। उत अपि च मानुषेभिः मनुष्यैरपि जुष्टम्। ईदृग्वस्त्वात्मिकाहं यं कामये यं पुरुषं रक्षितुमहं वाञ्छामि तं तं पुरुषम् उग्रं कृणोमि। सर्वेभ्योऽधिकं करोमि। तदेव ब्रह्मणं स्रष्टारं करोमि तमेव ऋषिमतीन्द्रियार्थदर्शिनं करोमि तम् एव सुमेधां शोभनप्रज्ञं च करोमि। (10.125.5 सा.)
8. पुरात्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। महदेवस्य धनुः चापम् अहम् आ तनोमि। ज्ययाततं करोमि। किमर्थम्। ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्टारं शरवे शरुं हिंसकं त्रिपुरनिवासिनमसुरं हन्तवै हन्तुं हिंसितुम्॥.....अहम् एव समदम्। समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत्संग्रामः। स्तोतृजनार्थे शत्रुभिः सह संग्राममहमेव कृणोमि करोमि। तथा द्वावापृथिवी दिवं च पृथिवीं चान्तर्यामितया अहम् एव आ विवेश प्रविष्टवती। (*ऋग्वेदे*,10.125.6 सा.)
9. विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेणोत्पादयन्ती अहमेव परेणानधिष्ठिता स्वयमेव प्र वामि प्रवर्ते। (*ऋग्वेदे* सा. 10.125.8)
10. देवींवाचमजनयन्तदेवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सानो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ (*ऋग्वेदे,* 8.89.11)
11. *निरुक्ते.* (त्रयोदशोऽध्यायः)
12. चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो बृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश॥(*ऋग्वेदे,* 4.58.3)
13. वाङ्नामान्युत्तराणि सप्तपञ्चाशत् (*निरुक्ते* 2.7)
14. वागर्थेषु विधीयते तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते। (*निरुक्ते* एकादशोऽध्यायः)
15. वागेषा माध्यमिका ध्वंसने मेघेऽधिश्रिता (*निरुक्ते* 2.2)
16. उतः त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः (*ऋग्वेदे,* 10.71.4)
17. समुद्रोऽसि विश्व व्यचाऽअजोऽस्येकं पाद हिरसि बुद्धन्या वागस्येन्द्र मसि स दोऽस्यृतस्य द्वारौ। (*यजुर्वेदे* 5.33)
18. इयं या परमेष्ठिनीवाक् देवी ब्रह्म संशिता।
ययैव संसृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तुनः (*अथर्ववेदे*, 19.9.3)
19. धीतीवायेअनयन्वाचोअग्रंमनसावायेऽवदन्नृतानि।
तृतीयेनब्रह्मणावावृधानास्तुरीयेनामन्वतनामधेनोः (*अथर्ववेदे*, 7.1.1)
20. *ऐतरेय ब्राह्मणे*, 6.3
21. तत्रैव 3.1
22. वाग् वै समुद्रो न वै वाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते। (तत्रैव 5.16)
23. *कौपितकी ब्राह्मण* 5.2
24. तत्रैव . 2.7
25. *शतपथ ब्राह्मण* 8.1.2.9
26. वाग्वैमतिःवाचाहीदं सर्व मनुते। (तत्रैव 8.1.2.7)

27. वाग् एवाग्निः (तत्रैव 3.2.2.13)
28. वागेवऽर्थश्च सामानि च । मन एव यजुंषि।
29. वाग्वै सरस्वती (*तैत्तिरीय ब्राह्मणे* 6.7)
30. *छान्दोग्योपनिषदि* 7.1
31. स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति। (तत्रैव. 7.1)
32. एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग् रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम् रसः साग्र उद्गीथो रसः (तत्रैव 1.1)
33. वागेव ऋक् प्राणः साम ओमित्योतदक्षरमुद्गीथस्तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक् च प्राणश्च ऋक् च साम च (तत्रैव)
34. यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (*केनोपनिषद्*, 1.1.5)
35. ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति (माण्डुक्योपनिषद् 1.1.5)
36. तस्मादेतद् ब्रह्म नाम् रूपमन्नञ्च जायते (तत्रैव 1.1.9)
37. तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति। (तत्रैव 2.1.1)
38. तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु *वाङ्मनः।*
तदेतत् सत्यं तदमृतं तद्वेद्ध्व्यं सौम्य विद्धि॥ (तत्रैव 2.2.2)
39. *माण्डुक्योपनिषदि*, 1
40. सोऽयमात्माऽध्यक्षरम् ओङ्कारऽधिमात्रं, पादा मात्राः मात्राश्च पादाः (तत्रैव 8)
41. वृ.उ. 1.1
42. वृ.उ. 4.2
43. संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरञ्च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।(श्वे.उ. 1.8)
44. क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। (तत्रैव 1.10)
45. वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः।
स भूय एवेन्धन योनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे (तत्रैव 1.13)
46. गोपथ उपनिषदि 4.11
47. तत्रैव 1.20

जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
जयपुर-302021

पराशक्तिसाधनापद्धतयः

भूदेवशर्मा

शक्त्युपासना—सकलेऽस्मिन् विश्वे यत्किमपि दृश्यं दृश्यत्वेन दृश्यते न हि तत्किमपि दृश्यम्, अपि तु सर्वं शक्तेः स्थूलस्वरूपमेव। उक्तश्च **सर्वं शक्तिमयं जगत्।** यदा वयं चिन्तयामः सृष्टेः मूलं किम्? तदा वेदेषु उपनिषत्सु च उत्तरं प्राप्यते यत् आनन्दविज्ञानघनमनोमयप्राणगर्भिता वाक् एव सृष्टेः मूलाधिष्ठानमस्ति। लौकिके साहित्येऽपि यथा—

इदमन्धतमं कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते। — *काव्यादर्शे*

इयम् वाक्स्वरूपिणी शक्तिः प्राणगर्भितास्ति। प्राणेषु मनोमयीशक्तिर्विद्यते। मनस्येव विज्ञानस्वरूपिणी शक्तिर्विद्यते। विज्ञानेऽपि सर्वान्तरतमत्वेन आनन्दस्वरूपिणी सच्चिन्मयी पराम्बिका महाभट्टारिका परदेवता राजते। तस्याः एव सर्वे वेदाः उपनिषदो गानं कुर्वन्ति। तस्याः उपासनाविषये संसारे नानाविधाः पन्थाः प्रचलिताः सन्ति। अस्माकं भारतीयपरम्परायां विद्यते सनातनपरम्परा यत् मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना। अर्थात् सृष्टेः आदितः एव मानवेन चिन्तनं कृतम् अस्यां सृष्टौ मनोऽनुकूलं फलं कथं प्राप्तव्यं किं विधातव्यं येन भुक्तिमार्गे मुक्तिमार्गे वा साफल्यं स्यात्। तेन चिन्तनेनैव अस्माकं पूर्वजैः ऋषिभिर्महर्षिभिः उपासनामार्गस्यान्वेषणं कृतं। ये भोगवादिनः आसन् तैः सृष्टेः सश्चरमार्गमवलम्ब्य आनन्दविज्ञानौ गौणत्वेन तथा च मनप्राणवाक् एतेषां प्राधान्यं स्वीकृत्य विविधाः उपासनापद्धतयः आविष्कृताः। तैः जीवने साफल्यश्च अवाप्तम्। ये मुक्तिमार्गगामिनः आसन् तैः प्रतिसञ्चरमार्गं स्वीकृत्य आनन्दविज्ञानौ मुख्यत्वेन स्वीकृत्य तथा च वाक्, प्राण, मन एतेषां गौणत्वं स्वीकृत्य विविधाः ज्ञानमार्गीया उपासनापद्धतयः अन्वेषिताः। सञ्चरं विज्ञानमार्गं तथा च प्रतिसञ्चरं ज्ञानमार्गमस्ति। **ब्रह्मैवेदं सर्वं**। इदं सृष्टिरूपं-विज्ञानमार्गमस्ति। **सर्वं खल्विदं ब्रह्म**। इति प्रतिसञ्चररूपं ज्ञानमार्गमस्ति। **एकोऽहं बहुस्याम्** इति सृष्टेः स्वरूपमस्ति। स्वकीयं विस्तारमस्ति इदमेवभुक्तिमार्गं भोगमार्गम् वा।

अनेकादेकम्, प्रतिविस्तारात् केन्द्रम् प्रति, बहिर्तः अन्तरं प्रति, यत् प्रत्यागमनमस्ति तदेव मोक्षमार्गम्। प्रतिसञ्चरमार्गम् ज्ञानमार्गम् वा।

निराकारसाकारभेदेन उपासनापद्धतयः प्रचलिताः सन्त्यस्मिन् कालेऽपि प्राणाः निराकाराः सन्ति पञ्चभूताः साकाराः सन्ति। प्राणाः भूताश्चोभावपि अग्निरूपौ। एकाः मर्त्याग्निरूपाः एकाः अमृताग्निरूपाः यथा एकस्मिन् मन्त्रे—

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते अग्निर्जागार तमुसामानियन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।।

—ऋग्वेद 5-44-15

अनेन मन्त्रेण स्पष्ट्यते यत् विश्वेऽस्मिन् यत्किमपि दृश्यते तत् 'अग्निसोमात्मकं जगत्।' वागेवाग्नित्वेन सृष्टेः मूलकारणं ज्योतिस्वरूपात्मकं शक्तिरूपा अस्ति। सैव दुर्गा। सैव महाकाली। सैव महालक्ष्मी। सैव महासरस्वती। सैव रमा रामा राधा भगवती पराम्बा त्रिपुरसुन्दरी। सैव सीता मैथिली जनकात्मजा भुवनेश्वरी। तस्या समाराधनायां *मार्कण्डेयपुराणे* द्रष्टव्यमिदं श्लोकम्—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।।

— दुर्गासप्तशती 11-5

वेदेष्वपि शक्तेः विषये तस्याः स्वरूपवर्णनं प्राप्नोति। यथा—**सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति। साब्रवीत् अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माणं ब्रह्मणि वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहं अखिलं जगत्। वेदोऽहं अवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्।** — *देव्यथर्वशीर्षे*, 1-4

अन्यत्र च जगद्गुरुरामानन्दाचार्येण स्वामी श्रीरामभद्राचार्येण स्वकीये ऋतम्भराप्रज्ञायां विरचिते वाङ्मयीउपासनापद्धतौ जगज्जननी सीतायाः स्वरूपमाधुर्यवर्णनक्रमे शक्तेः शक्तिमन्त्रं प्रतिभाववर्णनमद्भुतं वैशिष्ट्यत्वेन वर्णितं यथा—

यन्मञ्जुलाननसरोजमनोज्ञभृङ्गे
भूमा बुभूषति भवन्नपि भव्यभव्यः।
रामोऽपि तत्परिमलाहृतचारूचेता
जागर्ति सैव जननी जगतीह सीता।

— श्रीसुतानिधिस्तोत्र काव्ये प्रथमतरङ्गे, श्लोकसंख्या 4

अग्रे च शक्तेः सगुणसाकारस्वरूपस्य कीदृशी विलक्षणतास्ति तस्याःवर्णनमपि द्रष्टव्यम्—

यद्रूपसौभगसुधानिधिमग्नसत्त्वोऽनन्तोऽप्यहोजठदसौ समनन्ततां स्वाम्।
आनन्दसिन्धुरपि राम उदूढतेजा आनन्दमाप परमा ननु सैव शक्तिः।।

— श्रीसुतानिधिस्तोत्र काव्ये प्रथमतरङ्गे, श्लोकसंख्या 7

उपर्युक्तवर्णनं नास्ति सामान्यत्वेन काव्यलेखनं अपि तु सर्वं ऋतम्भराप्रज्ञाया: वेदिकायां स्वानुभूते: काव्यरूपत्वेन वर्णनमस्ति। शक्ते: वाङ्मयीउपासनापद्धतौ संलग्नो भूत्वा यथा दर्भपवित्रपाणिना भगवता पाणिनिना प्राङ्मुखोपविश्य पराऋतम्भराप्रज्ञया व्याकरणशास्त्रस्य सूत्राणि व्यरीरचत। यथा पराऋतम्भराप्रज्ञया युद्धभूमौ स्थितेऽपि पार्थाय पाण्डुनन्दनाय श्रीअर्जुनाय श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीताया: ज्ञानं प्रदत्तम्। लोकहिताय च श्रीमहर्षिणा भगवता व्यासेन समाधौ तत्सर्वं प्रत्यक्षीकृत्य लोके प्रकटीकृतम्। तथैव शक्ते: स्वरूपं समाधौ प्रत्यक्षीकृत्यैव ऋषिभि: दशमहाविद्यादीनां स्फुटं स्वरूपं यन्त्रमन्त्रतन्त्रादिरूपेषु लोकहिताय लौकिकानां भुक्तिमुक्तिसम्बन्धिनीच्छानां परिपूर्त्तये प्रकटीकृतम्। यथा श्रीललितादेव्या:यन्त्ररूपेण वर्णनमिदम्—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म–
मन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयञ्च
श्रीचक्रमेतदुदीरितं परदेवताया:।।

— श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रे श्रीयन्त्रवर्णने, श्लोक संख्या 1

उक्तश्लोकेन श्रीयन्त्रस्य निर्माणं श्रीविद्योपासकानां समुदाये भवति। तस्य यन्त्रराजस्य शक्ते: प्रतिनिधित्वेन प्रतिष्ठां कृत्वा सम्पूर्णोपासनापद्धति: प्रचलति तस्मिन् समुदाये।

धर्मसम्राट्स्वामिहरिहरानन्दसरस्वती (करपात्रि) अपरनाम्ना प्रसिद्धै: पराऋतम्भरा प्रज्ञासम्पन्नै: श्रीविद्याया: सम्यग्तया उपासनार्थं *श्रीविद्यारत्नाकर:*, *श्रीविद्यावरिवस्यादय:* नैका: ग्रन्था: विरचिता:। यै अद्यत्वेऽपि बहव: श्रीविद्योपासका: शक्तेराराधनां कृत्वा स्वकीयं जीवनसार्थकं कुर्वन्त: सन्ति।

इदानीं जगति शक्ते: समाराधनतत्पराणां मध्ये पराऋतुम्भराप्रज्ञासम्पन्नो जगद्गुरुरामानन्दाचार्य–चित्रकूटस्थतुलसीपीठाधीश्वरस्वामी रामभद्राचार्यो शताधिकग्रन्थानां प्रणेता सकलशास्त्रपारावारपारीणत्वेन अप्रतिमप्रतिमोन्यतमत्वेन च राजते। अन्येऽपि बहव: स्वनाम धन्या: महापुरुषा: शक्ते: उपासनायां रता: सन्ति लोके परञ्च ते स्वकीयं शक्त्युपासकस्वरूपमवगुण्ठ्य सामान्यत्वेन शैवा:, वैष्णवा:, इत्यादिस्वरूपत्वेन प्रसिद्धा: लोके विचरन्ति। यथा अस्मिन् श्लोके वर्णिता: —

अन्त: शाक्ता: बहि: शैवा: सभायां वैष्णवा: मता:।
नानारूपधरा कौला: विचरन्ति महीतले।।

अत्र चिन्तनीयमस्ति यत् शक्तिरस्ति तु शक्तिमान् अपि अस्ति। शास्त्रेषु शक्ते: शक्तिमतश्च अभेदत्वं सर्वत्र प्रतिपादितम्। यथा राधा एका स्वरूपात्मिकाशक्ति: सैव राधा सैव कृष्ण:। सैव रामो सैव सीता। सैव गौरी सैव शिव:। तत्राभेदान्वयोऽस्ति। अत: तस्या: उपासनापद्धतय: अपि समाना: एव। तत्र उपासनानां नवधा वर्णनं प्राप्नोति प्राचीनभारतीयार्षपरम्परायाम्। यथा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

एताः नवधोपासनापद्धतयः ऋषिभिः विस्तरेण प्रदर्शिताः। अद्यत्वेऽपि उपासनायां एषां महती भूमिकास्ति।

शक्तेः उपासना सरण्यां दशमहाविद्यानां स्वरूपाः तासामुपासनापद्धतयश्च नैकत्वेन दृष्टिपथे आयन्ति। एषा परम्परोत्कृष्टतमोपासनापद्धतिरस्ति या मन्त्रयन्त्रतन्त्रआदिभिः परिपूर्णास्ति।

उपासनायाः द्वौ भेदौ मुख्यतः स्तः। एका निर्गुणा निराकारा उपासनापद्धतिः द्वितीया सगुणा साकारा पद्धतिः। अत्र भगवतः श्रीकृष्णस्य कथनं द्रष्टव्यमस्ति। यथा—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। — *श्रीमद्भगवद्गीता 12-5*

अस्मिन्नेव सन्दर्भे श्रीदत्तात्रेयभगवता *अवधूतगीतायां* कथितमिदं श्लोकम्—

येनेदं पूरितं सर्वं आत्मनैवात्मनात्मनि।
निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम्।।

लोककल्याणार्थम् सगुणोपासनापद्धतिः लोकेप्राचुर्येण प्रचारिताः।

अन्ते तात्पर्यत्वेन कथनमस्ति यत् संसारे या कापि शब्दराशिः या कापि उपासनापद्धतिः दृश्यते सा सर्वा शक्तेः उपासना एव। यथा—

तव च का किल ना स्तुतिरम्बिके।
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो।
मनसिजासु वहिः प्रसरासु च।

इति विचिन्त्य शिवे शमिता शिवे जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे।

प्राचार्यः,
राजकीयवरिष्ठउपाध्यायसंस्कृतविद्यालयः
पो. अमरसर, जिला जयपुर (राजस्थानम्)
(शोधार्थी – जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय)

तन्त्रेषु शक्तिसाधनाविषयिकाचारविविधताविमर्शः

पूरनचन्द्रजोशी

श्रीचक्रराजनिलयाश्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका।।

आचारदृष्ट्या तन्त्राणि त्रिविधानि तानि च समयाचार-कुलाचार-मिश्राचारभेदेन विभक्तानि। तत्र वैदिकमार्गमनुरूध्य श्रीविद्योपदेशाः समयाचार-दक्षिणाचारादिभेदेन *सन्दनसंहिता-वसिष्ठसंहिता-सनकसंहिता-सनत्कुमारसंहिता-शुकसंहितादिभेदैः* —अनेकधा आख्याताः।

अत्र बाह्यान्तरभेदेनोपासनं विधीयते, तत्रापि उपासनं स्थूलाचारेण प्रथमतः स्वीकृतम्। तत्र गाढानुरक्तौ बाह्याचार एवान्तरयागरूपेण विपरिणमते। अत्र उपासना सात्त्विकैः पदार्थैर्विधीयते। कुलाचारस्तु वाममार्गेणोपासना। अस्मिन् मार्गे स्थूलैः पञ्चमकारैर्मद्यमुद्रामांसमीन-मैथुनादिभिरर्चना क्रियते। तत्रापि गाढानुरक्तौ शनैःशनैः आन्तरोपासनया च देवी आराध्या भवति। अत्र मद्यपदेन खेचरीमुद्रया आनन्दरसपानं, मांसभक्षणं च तपसा स्वशरीरतापनं, मीनभक्षणञ्च, इडा-पिङ्गला-सुषुम्नामार्गेण षट्चक्रभेदने आरोहवरोहद्वारा सामर्थ्यार्जनम्, मैथुनं च षट्चक्रान्निर्भिद्य सहस्रारे शिवशक्त्योः सामरस्यभावनञ्च।

एवं कुलतन्त्राणि महामाया-शाम्बरासुरोपदेशेन ज्ञायन्ते। तानि च चतुष्षष्टिसंख्याकानि शिवप्रोक्तानि। एवं समाचार-कुलाचारयोर्मिश्रणं विधाय प्रवर्तितो मार्गो मिश्राचार इति। तथा श्रुतिस्मृतिनिषिद्धाचारप्रतिपादकत्वात् कुलतन्त्राणि, मिश्राचार-तन्त्राणि च द्विजातिभिर्हेयानि। एतेनैव कारणेन भगवता शिवेन भगवतीं गौरीमुद्दिश्य *ज्ञानार्णवे* कथितम्—

कौलमिश्रकमार्गौ हि हेयौ गौरि! द्विजातिभिः। इति।।

यद्यपि अद्वैतद्वैत-द्वैताद्वैतविशिष्टाद्वैत-शिवाद्वैतादिभैदैः तन्त्राणि विविधमार्गमवलम्ब्य प्रवर्तितानि, तथापि प्रस्थानत्रयमेव प्रधानानि, तानि च द्वैतम्, अद्वैतं, द्वैताऽद्वैतमिति। एतेषु शाक्ततन्त्राण्यद्वैतानि, शैवदर्शनं द्वैतपरमद्वैतपरं च। शैवतन्त्राणि हि प्रायशो द्वैतपराण्येव।

भगवतो: विष्णो: चतुर्दशावतारा: यथा प्रमुखा: तथैव शाक्ततन्त्रेषु उपासनीया देवता: प्रधानरूपेण दशमहाविद्यारूपेण विहिता इति तत्र-तत्र तन्त्रेषु सङ्केतितम्।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च, विद्या धूमावती तथा।।
बगलासिद्धविद्या च, मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्या: सिद्धविद्या: प्रकीर्तिता:।। – *चामुण्डातन्त्रे।*

एवमासु महाविद्यासु भगवती काली-तारा-षोडशीविद्याश्च प्रामुख्यमुपगता:। आसां विद्यानां क्रमदीक्षाऽपि वरीवर्त्ति। आभ्यस्त्रिमहाविद्याभ्योऽतिरिक्तानां महाविद्यानां स्वतन्त्रग्रन्था न्यूना एव, परं तासां पूजापद्धति: तत्र-तत्र सम्प्रदायेषु प्रचलत्येव।

एवं शाक्ततन्त्रिकाणां द्विधा: भेद:-कौलमतं, समयाचारमतं च। चतुष्षष्टितन्त्राणि कौलेषु प्रमुखत्वेन गण्यते।

भगवती महाकाली, दक्षिणकाली, भद्रकाली, चेत्यादयो देव्या बहव: भेदा जायन्ते। किञ्च दक्षिणाम्नाय-काली, उत्तराम्नायकाली, चण्डीकाली च अनेके भेदा जायन्ते। एतदतिरिक्ताऽपि-कामकलाकाली धनकाली, सिद्धकाली, चण्डीकाली, च इत्यादय: भेदा: सन्ति। काल्या भैरव: महाकाल: इति प्रसिद्ध एव। एतद्विषये *कालीतन्त्रम्, महाकालसंहिता, श्यामारहस्यम्, परतन्त्रादिभेदेन* बहवो ग्रन्था: प्रथिता:। तारामहाविद्या-विषयकग्रन्थाश्च *तारारहस्यम्, ताराभक्तिसुधार्णवस्तारणी तन्त्रम्, तोडलतन्त्रम्, नारायणभट्टकृता, ताराकल्पलतापद्धति:* इति अनेके ग्रन्था: ख्यातिमुपगता:।

एवं षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, ललिता, श्रीविद्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी चेति सर्वा अपि महाविद्यासु षोडशी एव प्रमुखतमा।

षोडशीमहाविद्याया: भैरव: कामेश्वर: त्रिपुरभैरव: कथ्यते। श्रीविद्योपासनायां द्वौ भेदौ-कादिविद्या हादिविद्या चेति।। तत्र च पूर्वा कामराजोपासिता एवं अपरा लोपामुद्रोपासिता विद्या अस्ति। श्रीविद्या हि पञ्चदशी, षोडशी इत्यादिनामभिर्मन्त्रध्वनि: प्रसिद्धा बीजाक्षरसमुच्चयरूपा, मूलमन्त्रात्मिका चास्ति।

गुरो: सकाशात् प्राप्या, अक्षरजपक्रियारूपक्रियानिर्वर्त्या, साधकेन विविधै: जपप्रकारै:, पुरश्चरणप्रकारैश्च संस्कार्या, क्रमेण बहुविधा सिद्धिदशालभमाना चानुभूयते।

सा परादेवता परापट्टारिकास्वरूपभूता अपरिच्छेद्या, मूलप्रकृतेरपि परा अविकारिणी। सैव स्वेच्छया प्रपञ्चसृष्ट्यादौ प्रभवन्ती, पराशक्ति:, शब्दब्रह्म, स्रष्ट्री, गोप्त्री, संहन्त्री इत्यादिकम् औपाधिकं नामजातं भजते। सैव निर्विकल्पा, निराधारा, निर्भेदा, निर्गुणा, निष्कला, निष्कलङ्का, निरूपेत्यादिभिर्नामभि: तया निरूपितम् परं ब्रह्म। अत: श्रीविद्यामेव ब्रह्मविद्यामाहु:।

श्रीविद्यामुख्यमन्त्राधीनं हि श्रीमातुर्भानम्। तच्च श्रीमातुरनुग्रहादेव लभ्यम्।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूंस्वाम्

इत्यौपनिषदो निर्देश:।

तत्र सर्वतन्त्रागमोपास्यदेवतामुपास्तिर्नाम न केवलमाराध्यं देवता स्वरूपज्ञानपूर्वकं तत्रोपायं क्रियमाणं यत्किमपि कर्म। उपास्तौ काचन भूमिका अपेक्ष्यते, यां भक्तिमाहु:। सा हि भूमिका तदा स्थिरा भवति, यदा अर्थावगमपूर्वकं स्वं स्वं विहितकर्म कुर्वाण: साधक: कर्मणापरिशुद्धचित्त: लोके नात्यन्तमसक्तो न वा सक्त:, आराध्यविषयिणीप्रीतिं वहति। तद्विषयकरूपिण्या प्रीत्या क्रमेण तस्यान्त:करणं देवताकारतया परिणमते। सा हि वृत्तिरुद्भिन्ना प्ररोहति यामाहुर्भक्तिम्। तदुक्तं भागवते प्रह्लादेन—

या प्रीतिरविवेकिनां विषयेष्वनुपायिनी।
त्वामनुस्मरत: सा मे हृदयान्नापर्सपतु।।

साधके एतादृशी अनुस्यूता भगवत्स्मृति: सापि निरुपाधिका भवति। तदुक्तम्—

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।। — *भगवद्गीता, 13.2*

देवतोपासनं च वैदिक-तान्त्रिकमिश्रभेदेन त्रिविधम्। तत्र तान्त्रिकवैदिकमिश्रमन्त्रैरेव साधकैराद्रियते वैदिकतान्त्रिकैकान्त्ये चित्रवृत्तिनिरोधसम्भवात्। अतो भगवत्प्रादैरुक्तं मानसपूजाप्रकरणे—

मन्त्रान् वैदिकतान्त्रिकान् परिपठन् सानन्दमत्यादरात्।
स्नानं ते परिकल्पयामि जननि स्नेहात्त्वमङ्गीकुरु।। इति।।

इत्यनेन वैदिकतान्त्रिकयोर्न परस्परं विरोध:, तत्र परस्परमुपकार्योपकारकता सिद्धा। *सौन्दर्यलहर्यां* परशतैस्तोत्रै: क्वचित्सा सगुणा, क्वचित् निष्कला, स्वचिद्योगिमात्रगम्या, मन्त्ररूपिणी, यन्त्ररूपिणी, स्वतन्त्ररूपिणी, अन्तर्यागक्रमाराध्या, बहिर्यागक्रमाराध्या, सर्वप्रकृतिभूता, सच्चिदानन्दं परं ब्रह्मरूपिणी सती तामधिकृत्य ज्ञेयमखिलं संगृह्णन्ति, स्तुतिरूपतया निबद्धत्वात् साधकै: साक्षाद् देव्या सह सामरस्यप्राप्तिं भावनामस्या स्तोत्रपद्धत्याम् अनुगृह्णन्ति एवं शिवशक्तिसामरस्यसङ्गतं तत्त्वजातं *सौन्दर्यलहरीस्तोत्रे*—

शिव: शक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्य: प्रभवति।। — *सौन्दर्यलहरी, 1*

शिव: सर्वमङ्गलोपेत: सदाशिव:। आगमवेदिनस्तु-शिवशब्देन नवयोनिचक्रमध्ये चतुर्योनि: रूपात्मकमर्धचक्रमुच्यते। शक्तिशब्देनावशिष्टं पञ्चयोन्यात्मकमर्धचक्रमुच्यते। एवमर्धद्वयमिलितं नवयोन्यात्मकं चक्रं भवति। तस्माच्चक्रादेव जगदुत्पत्तिस्थितिलया भवन्तीति। एतदेवोक्तम्—

चतुर्भि: शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभि:।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपु:।।

एवं शिवशक्त्योर्मेलनं षड्त्रिंशं सर्वतत्त्वातीतं तत्त्वान्तरमिति सिद्धान्त:। इति *लक्ष्मीधरी टीका।*

किञ्चान्यदपि भगवन् परमकारुणिक: शङ्करावतार: शङ्कराचार्य: शिवशक्त्योरभेदं ज्ञाययितुं सकलप्रपञ्च-साक्षिण्या: चिच्छक्ते: स्तुतिद्वारा मातृकादिमन्त्रानुद्धरति शिव इति।

जन्ममरणाद्यनेकक्लेशसंचयैरुपचीयमानतापत्रयरूपामङ्गलाभावाच्छिव: सदामङ्गलरूप:, परमानन्दनिर्भर:, एतादृश: शक्त्या कर्त्तुमकर्तुमन्यथाकर्त्तुं च प्रभवन्त्या, सामर्थ्यविशेषस्फूर्त्या यदि युक्तो भवति, तदा प्रभवितुं प्रभुर्भवितुं शक्तो भवति, समर्थो भवति, सर्वोत्कृष्टो भवतीत्यर्थ: अन्यथा न। न चेत् एवं देव: अप्रतिहतक्रीड: स्पन्दितुं चलितुमपि न कुशल: न क्षम:। अत एतत् कारणात् त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरप्युपासनीयम्। अत्र आदि शब्देन मनुचन्द्रादय: तदुक्तं—

विष्णु: शिव: सुरज्येष्ठो मनुश्चन्द्रो धनाधिप:।
लोपामुद्रा तथाऽगस्त्य: स्कन्दो कुसुमसायक:।।
सुराधीशो रौहिणेयो दत्तात्रेयो महामुनि:।
दुर्वासा इति विख्याता एते मुख्या उपासका:।। – *मानसोल्लासे।*

मनुश्चन्द्र: कुबेरश्च, मन्मथस्तदनन्तरम्।
लोपामुद्रा तथाऽगस्त्य: स्कन्दो विष्णुस्तथा शिव:।।
दत्तात्रेयो मुनि: शक्रो दुर्वाशाश्च त्रयोदश।
उपासते महाविद्यां द्वादशोक्तास्तवानघे।।
त्रयोदशी अक्षरा विद्या दुर्वाशोपासिता प्रिये।। इति।। *ज्ञानार्णवेऽपि।*

अनेकजन्मार्जितसुकृतराशिरेव तव प्रणामे स्तुतै पूजाजपध्यानेष्वेवाप्यधिकारी भवति, नान्य:।

तदुक्तं—

पूर्वजन्मकृतै: पुण्यैर्ज्ञात्वेमां परदेवताम्।
पूजयेदागमोक्तेन विधानेन समाहित:।। — *शारदातिलके।*

एवमेव श्रीविद्याया: महान् सन्दर्भ: तत् तत् शास्त्रेषु प्रतिपादितो विद्यते। दशमहाविद्यासु काली, तारा, षोडशी, बगला प्रभृतय: मुख्यतमा:। एतेभ्य: अतिरिक्ता: या अन्या महाविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, मङ्गला, कमलादय: तासां देशे-विदेशे क्वचित् क्वचिद् स्थानेषु चोपासनं दृश्यते। एतासां विद्यानां स्वतन्त्रा ग्रन्था नाधिका: परं तासां तासाञ्चोपासनपद्धतिर्यत्र तत्रोपलभ्यते। शाक्ततान्त्रिका: कौल-समयाचारभेदेन द्विधा सन्त: अपि बहुविधा जायन्ते। तासां तासाञ्च कीर्त्तनं तत्र-तत्र वरीवर्ति शास्ते। यथा सप्तशतीविद्याया उपदेशो *सप्तशतीसर्वस्वे* दृश्यते—

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सप्तशत्या महोदयम्।
यस्याश्च पठनान्मन्त्री त्यजेज्जन्मदरिद्रताम्।।
या चिन्मयी परादेवी त्रिपुरा त्रिविधाऽभवत्।
देवकार्यसुसिद्ध्यर्थम् असुराणां वधाय च।।
महत्यापदि सम्प्राप्ते देवा: सन्तुष्टुवुर्भृशम्।
तदा सा चिन्मयी शक्ति: कालीरूपा बभूव ह।।
सैव कालान्तरे लक्ष्मीस्तथैव च सरस्वती।
तासां कथानकं भद्रे! त्रिदशाध्यायरूपकम्।।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं स्तवं साप्तशताभिधम्।
स्तवस्य तस्य पठनात् सर्वसौख्यं लभेद्ध्रुवम्।।
तस्मिन देव्या: स्तवे पुण्ये मन्त्रा: सप्तशती शिवे।
तस्मात् सप्तशतीनामस्तवं परमदुर्लभम्।।

का च सप्तशतीनाम, देवी दारिद्र्यनाशिनी।
तस्या: स्वरूपं मे ब्रूहि तत्त्वत: परमेश्वरी। *–चिदम्बरसंहितायामपि।*

यथाश्वमेध: क्रतुषु देवानाञ्च यथा हरि:।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तव:।।– *सप्तशतीरहस्यादौ*

महानिर्वाणतन्त्रे च शक्तेर्विविधस्वरूपमाख्यापयन् विज्ञापितम् यत्—

श्रीदेव्युवाच

एतद्वेदितुमिच्छामि मदीयं साधनं परम्।
ब्रह्मसायुज्यजननं यत्त्वया कथितं प्रभो।।
विधानं कीदृशं तस्य साधनं केन वर्त्मना।
मन्त्र: को वा विहितो: ध्यानपूजादिकं च किम्।।

एवं भगवत्या: कृते प्रश्ने सदाशिव: प्रोवाच—

त्वं परां प्रकृतिं साक्षाद् ब्रह्मण: परमात्मन:।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं त्वं जगज्जननी प्रिये।।
महदाद्यणुपर्यन्तं यदेतत्सचराचरम्।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे! त्वदधीनमिदं जगत्।।
त्वमाद्या सर्वविद्यानां अस्माकमपि जन्मभू:।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन।।
त्वं काली तारिणी दुर्गा षोडशी भुवनेश्वरी।
धूमावती त्वं बगला भैरवी छिन्नमस्तका।।
त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी, त्वं देवी! कमलालया।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वदेवमयी तनु:।।
त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं व्याक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
निराकारा च साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति।। इति ।।

एवञ्च *मत्स्यपुराणे* पीठरहस्यमाख्यापयन् अष्टोत्तरशतं देवी पीठानि त्रयोदश श्लोकत: एकचत्वारिंशत् श्लोकपर्यन्तं निगदितानि। एवं महाविद्यारहस्यं अष्टमाध्याये *श्रीमद्भागवते* प्रतिपादयन् भगवत्या विविधस्वरूपं प्रतिपादितं वर्तते।

तथा च *स्कन्दपुराणे* मानसखण्डे शैलपर्वतकालिकामहात्म्ये सप्तनवतितमेऽध्याये मानसखण्डे महाकालिकाया विविधरूपाणि प्रदर्शितानि दृश्यन्ते। तथैव *लघुसप्तशती* स्तोत्रेऽपि चण्डिकाया: अनेके भेदा: निर्देशिता:। *कालीरहस्ये कालीस्तोत्रे* भगवत्या: कालिकाया: अनेकै: नामभि: अनन्ता महिमा गदिता। एवं प्रकारेण विविधतन्त्रागमग्रन्थेषु विविधता एवमुपासनावैशिष्ट्यता च प्रदर्शिता दृश्यन्ते इति।।

वेदविभागे अतिथि: अध्यापक:
श्रीवेङ्कटेश्वरवैदिकविश्वविद्यालय,
तिरुपति: आन्ध्रपेदेश:।
चलदूरभाष : 09550621228

षट्चक्र का सैद्धान्तिक स्वरूप

डॉ. देवेन्द्र कुमार शर्मा

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मूल आधार एवं आदिस्रोत वैदिक वाङ्मय है। यह अति प्राचीन विशाल वाङ्मय अपनी विषयगत, कालगत, देशगत तथा प्रभावगत विशेषताओं के कारण विभिन्न अन्वेषणों की आधारभूमि भी है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में इतिहास और पुराण को वेद के उपबृंहण का साधन माना गया है। **इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।** वेदाङ्ग उपवेद एवं वेदानुकूल शास्त्र-विकास, वैज्ञानिक-साहित्य का वेदाधारत्त्व आदि ऐसे बिन्दु है, जो वैदिक वाङ्मय के मूल भाग के साथ-साथ अन्य वैदिक वाङ्मय के अतिवृहत्तर क्षेत्र को व्याप्त करते हैं। वैदिक ज्ञान और कर्म का लक्ष्य आत्म-चेतना को एक लोकोत्तर आध्यात्मिक चिन्मय धरातल पर प्रतिष्ठित करना है। यही कारण है कि वैदिक दृष्टि में समस्त कर्मों का परिपाक एवं सार्वभौम तत्त्वग्राही चिन्तन की प्राप्ति रही है। आगम परम्परा इस वैदिक दृष्टि-बोध को अपना महनीय आश्रय और गन्तव्य काल के अन्तराल के बाद भी स्वत: स्फूर्त, जीवन्त और लोकग्राह्य बनाने के लिए निरन्तर आश्रय लेती रही हैं। आगम पर वैदिक वाङ्मय के आधारों को स्पष्ट देखा जा सकता है। इन आगमों के के आराध्य देव उनका स्वरूप, उपासक से उनके सम्बन्ध, उपासना का आश्रय एवं विधि, जड़ अथवा जगत् के साथ परतत्त्व का सम्बन्ध आदि विषयों का आधार न केवल वैदिक वाङ्मय दृष्टिगोचर होती है। तन्त्र का मूल स्रोत वेद है। ऋग्वेद के *वागम्भृणीसूक्त* (10/125) में जिस शक्ति का प्रतिपादन किया गया है, तन्त्र उसी शक्ति की एकमात्र साधना है। भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से साधना की दो धाराएँ प्रवाहित होती चली आ रही है—पहली है वैदिक धारा और दूसरी है तान्त्रिक धारा।

वैदिक धारा सर्वसाधारण के लिए साधना के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है, जबकि तान्त्रिक धारा चुने हुए अधिकारियों के लिए गुप्त साधना का उपदेश देती है। एक बाह्य है और दूसरी आभ्यन्तरिक। परन्तु दोनों धाराएँ प्रत्येक काल और प्रत्येक अवस्था में साथ-साथ विद्यमान रही है। इसीलिए जिस काल में वैदिक-यज्ञ अपनी चरम सीमा पर थे उस समय भी तान्त्रिक साधना-उपासना का वर्चस्व कम नहीं था। इसी प्रकार कालान्तर में जब 'तन्त्र' का प्रचार प्रबल हुआ उस समय भी वैदिक कर्मकाण्ड विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं हुआ था।

वैदिक और तान्त्रिक साधना-उपासना की समकालीनता का पूर्ण परिचय हमें उपनिषदों में प्राप्त होता है।

आगम सृष्टि-विकास का मूल सकल ब्रह्म से मानते हैं। उसके पूर्व तत्त्वातीत अवस्था है, जिसे परासंवित् या परावाक् के नाम से जाना जाता है। उसे सच्चिदानन्द ब्रह्म भी कहते हैं। वह निष्कल ब्रह्म यद्यपि नामों से पुकारा जाता है, परन्तु उसका निर्वचन नहीं हो सकता – वह अनिर्वचनीय तत्त्वातीत अवस्था है। उस अवस्था में ब्रह्म में उसकी शक्ति विलीन रहती है, उस **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** के सिवा कुछ नहीं रहता। वह निष्कल ब्रह्म अपने-आपको स्वभावत: देखता है, इससे उसमें 'अहम्' का प्रकाश होता है और उसके साथ ही 'अस्मि' का विमर्श भी स्वयमेव हो जाता है। इस प्रकाश को शिवतत्त्व और विमर्श को शक्तितत्त्व कहते हैं। ये दोनों ही शक्ति के प्रसार है। शक्ति और शिव की यह संश्लिष्ट अवस्था ही सृष्टि रचना का मूल कारण है।

नाद

ईक्षण के पश्चात् निष्क्रिय से सक्रिय अवस्था में आने के लिए शक्ति और शिव का संयोग होता है। यह संयोग इनका पारस्परिक सम्बन्ध ही 'नाद' कहलाता है। शिव और शक्ति की इस अवस्था का जो निर्वचन हो सकता है उसका शास्त्र सङ्केत इस प्रकार करते हैं—

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्द: प्रथम: शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञै:।। — *तत्त्वसन्दोह, 1*

वह जिसके परे कुछ नहीं है, अपनी इच्छा से इस अखिल जगत् की सृष्टि करने के लिए स्पन्दित होता है उसका वह प्रथम स्पन्दन ही ज्ञानी पुरुषों के द्वारा शिवतत्त्व कहलाता है।

इच्छा सैव स्वच्छा सन्ततसमवायिनी सती शक्ति:।
सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।। — *तत्त्वसन्दोह, 1*

वह विशुद्ध इच्छारूपी शक्ति जो नित्य शिव के साथ रहती है अपने भीतर लीन सचराचर जगत् का बीज है। निष्कल ब्रह्म में जो तल्लीन शक्ति रहती है, उसे सरस्वती भी कहते हैं, और शिव तथा शक्ति की संयुक्तावस्था ही 'नाद' है।

सच्चिदानन्दविभवात्सकलात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।।—*शारदातिलक 1/7*

बिन्दु

सच्चिदानन्द-विभव अर्थात् सकल परमेश्वर से शक्ति हुई, शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ। यह बिन्दु शक्ति की वह अवस्था विशेष है जहाँ से उसकी सृष्टि-क्रिया प्रारम्भ होती है। बिन्दु तत्त्व को ईश्वर-तत्त्व के नाम से भी पुकारते हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि-विकास में मूल

तत्त्व शक्ति ही है, तथा यह एक और चित्–शक्ति और दूसरी ओर मायाशक्ति के रूप में कार्य करती है। मायाशक्ति का लक्षण शास्त्र इस प्रकार करते हैं।

भेदधीरेव भावेषु कर्त्तुर्बोधात्मनोऽपि या।
मायाशक्त्येव सा विद्येत्यन्ये विद्येश्वरा यदा।। – *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा 3/2/6*

अर्थात् स्वयं बोधस्वरूप होते हुए भी जो कर्त्ता के भावों में भेदबुद्धिरूप है वही माया शक्ति है।

कला

चिद्रूपिणी शक्ति जब ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्ममयी हो जाती है तब ब्रह्म निष्कल (तत्त्वातीत) हो जाता है और फिर जब ब्रह्ममयी शक्ति चैतन्यरूपिणी होती है, तब ब्रह्म सकल होता है। इसी स्वरूप का निर्देश *शुक्लयजुर्वेद संहिता* में इस प्रकार किया गया है–

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। (31/3)

'यह विश्व चैतन्यरूपिणी शक्ति की महिमा है, सकल स्वरूप का निदर्शन है, पुरुष तो इससे बहुत परे है। उस पुरुष का एक पाद (सूक्ष्मतम अंश) अखिल प्राणी है, और इसके अमृत त्रिपाद (महत्तम अंश) द्युलोक में है।'

कला दो प्रकार की होती है—अन्तः और बाह्य। बाह्य कला के सोलह भेदों में चार के नाम हैं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति। शेष द्वादश कलाएँ शक्ति के विभिन्न स्वरूप है जो साधना में उपयोगी हैं। नाम के अनुसार ही उनमें उपयोगिता भी होती है। *नेत्रतन्त्र* में कलाओं का वर्गीकरण किया गया है तथा *प्रश्नोपनिषद्* के छठे प्रश्न में सुकेशा ने षोडशकला पुरुष के विषय में जिज्ञासा की है, महर्षि पिप्पलाद ने सोलह कलाओं को इस प्रकार बताया है—प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम। ऋषि ने इसके विषय में कहा है—

अरा इव रथानाभौ कला अस्मिन् प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति।।

अर्थात् रथ के चक्र के मध्य (नाभि में) जैसे अरे लगे रहते हैं वैसे ही इस पुरुष में कला प्रतिष्ठित है। उस वेद्य पुरुष को तुम्हें जानना चाहिए, जिससे तुम्हें मृत्यु से व्यथित न होना पड़े। साधक इन कलाओं के अधिष्ठातृ देवता की उपासना करके उनकी सहायता से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं तथा क्रमशः उन्नतोन्नत दशा को प्राप्त कर शक्तितत्त्व या ब्रह्मतत्त्व में लीन हो अपने जीवन के चरम उद्देश्य को प्राप्त होते हैं।

षट्चक्र

श्रीमद्भागवत (स्कन्ध 2, अध्याय 5) में ब्रह्माण्डरूपी विराट् शरीर का वर्णन है और कहा गया है कि कटि देश से ऊपर सात लोक है और कटि से नीचे भी सात लोक हैं। यही सुप्रसिद्ध लोक है। यथा—

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः।
सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान्।।
यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोद्ध्वं जघनादिभिः।।

शिवसंहिता के द्वितीय पटल के प्रारम्भ में लिखा है—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।।
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः।
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।
ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः।।

इसका निष्कर्ष यह है कि मनुष्य शरीररूपी पिण्डाण्ड विशाल ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है और जितनी शक्तियाँ इस विश्व का परिचालन करती है वे समस्त शक्तियाँ इस नर देह में विद्यमान है। इस प्रकार 'लोकमयः पुमान्' का यही रूप दिखलाया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ऊपर के सात लोक ही गायत्री मन्त्र की सप्त व्याहृतियाँ है और उन्हीं को दूसरे रूप में मूलाधारादि षट्चक्र तथा सहस्रारचक्र कहते हैं। और इसी को कुण्डलिनीयोग और लययोग भी कहते हैं। जिस प्रकार भूमण्डल का आधार मेरु पर्वत माना जाता है उसी प्रकार इस मनुष्य-शरीर का आधार मेरुदण्ड अथवा रीढ़ की हड्डी है। मेरुदण्ड तैंतीस अस्थि खण्डों के जुड़ने से बना हुआ है। यह सम्भव है कि इस तैंतीस की संख्या का सम्बन्ध तैंतीस कोटि देवताओं अथवा प्रजापति, इन्द्र, अष्टवसु, द्वादश आदित्य और एकादश रुद्र से हो। इसका नीचे का भाग नुकीला और छोटा होता है। इस नुकीले स्थान के आस-पास का भाग 'कन्द' कहाजाता है और इसी कन्द में जगदाधार महाशक्ति की प्रतिमूर्ति कुण्डलिनी का निवास माना गया है। कन्द तथा कुण्डलिनी की स्थिति के विषय में कई मत है।

मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में पिरोये हुए छह कमलों की कल्पना की जाती है। यही कमल षट्चक्र हैं। प्रत्येक कमल षट्चक्र हैं। प्रत्येक कमल के भिन्न संख्या में दल है और प्रत्येक का रंग भिन्न है। ये छः चक्र शरीर के जिन अवयवों के सामने मेरुदण्ड के भीतर स्थित हैं उन्हीं अवयवों के नाम से पुकारे जाते हैं। इनके अन्य नाम भी हैं।

(1) मूलाधारचक्र

इस चक्र की स्थिति रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे के भाग में 'कन्द' प्रदेश से लगे गुदा और लिङ्ग के मध्य भाग में है। इस चक्र का कमल रक्तवर्ण का है और उसमें चार दल है। इन दलों पर वं, शं, षं और सं अक्षरों की स्थिति मानी गई है। इसका यन्त्र पृथिवीतत्त्व का द्योतक है और चतुष्कोण है। यन्त्र का रंग पीत है, इसके बीज मन्त्र है। यन्त्र के देव और शक्ति ब्रह्मा और डाकिनी है। इस यन्त्र के मध्य में स्वयम्भू लिङ्ग है जिसके चारों और साढ़े तीन फेरे में लिपटी हुई सर्पाकार पूँछ को अपने मुख में दबाये हुए सुप्त कुण्डलिनी शक्ति विराजमान है। प्राणायाम से जागृत् होकर यह शक्ति विद्युल्लतारूप में मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है।

(2) स्वाधिष्ठान चक्र

इस चक्र की स्थिति लिङ्गस्थान के सामने है। इसका कमल सिन्दूर वर्ण वाले छः दलों का है। दलों पर बं, भं, मं, यं, रं, लं की स्थिति मानी गयी है। इस चक्र का यन्त्र जलतत्त्व का द्योतक है और अर्धचन्द्राकार है। इस अर्धचन्द्राकार यन्त्र का रंग चन्द्रवत् शुभ्र है। इसके बीज मन्त्र भी है। यन्त्र के देव तथा देवशक्ति रुद्र और राकिनी हैं।

(3) मणिपूरक चक्र

यह चक्र नाभिप्रदेश के सामने मेरुदण्ड के भीतर स्थित है। इसका कमल नीलवर्ण वाले दस दलों का है। इन दलों पर भी बीज मन्त्र बताए गए हैं। इस चक्र का यन्त्र त्रिकोण है और अग्नितत्त्व का द्योतक है। इसके तीनों पार्श्व में द्वार के समान तीन 'स्वस्तिक' स्थित हैं। यन्त्र का रंग बालरवि-सदृश है। यन्त्र के देव और शक्ति वृद्धरुद्र तथा लाकिनी हैं।

(4) अनाहत चक्र

हृदय-प्रदेश के सामने वाला यह चक्र अरुणवर्ण के द्वादश दलों से युक्त कमल का बना है। शास्त्रों में इसके भी बीज मन्त्र हैं। चक्र का यन्त्र धूम्रवर्ण, षट्कोण तथा वायुतत्त्व का सूचक है। इसके यन्त्र के देव तथा देवशक्ति ईशान रुद्र और काकिनी हैं। इस चक्र के मध्य में शक्ति-त्रिकोण है जिसमें विद्युत् जैसा प्रकाश व्याप्त है। इस त्रिकोण से सम्बद्ध 'बाण' नामक स्वर्णकान्ति वाला शिवलिङ्ग है जिसके ऊपर एक छिद्र है। इस

छिद्र से लगा हुआ अष्टदल वाला हृत्पुण्डरीक नामक कमल हैं। इसी कमल में उपास्य देव का ध्यान किया जाता है।

(5) विशुद्ध चक्र

इस चक्र की स्थिति कण्ठप्रदेश में है। इसका कमल धूम्र वर्ण वाले सोलह दलों का है और इन दलों पर अं से अ: तक सोलह स्वरों की स्थिति मानी गयी है। इस चक्र का यन्त्र पूर्ण चन्द्राकार है और पूर्णचन्द्र की प्रभा से देदीप्यमान हैं। यह यन्त्र शून्य अथवा आकाश तत्त्व का द्योतक है। यन्त्र के बीज मन्त्र भी बताए गए है। यन्त्र के देव पञ्चवक्त्र और देवशक्ति शाकिनी है।

(6) आज्ञाचक्र

यह चक्र भ्रूमध्य के सामने मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में स्थित है। इसका कमल श्वेत वर्ण के दो दलों वाला है और इन दलों पर बीजमन्त्रों की स्थिति बताई गयी है। यहाँ पर इसका यन्त्र विद्युत्प्रभायुक्त 'इतर' नामक अर्द्धनारीश्वर का लिङ्ग है। यह यन्त्र महत् तत्त्व का स्थान है। यन्त्र के देव उपर्युक्त इतर लिङ्ग है और शक्ति हाकिनी हैं।

उक्त इन छ: चक्रों के बाद मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर सहस्र दल वाला सहस्रारचक्र है जहाँ परम शिव विराजमान रहते हैं। इसके हजार दलों पर भी स्वरों व व्यञ्जनों की स्थिति मानी गयी है। इस अत्यन्त गहन विषय पर सारांश यह है कि नश्वर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, बुद्धि तत्त्वों को क्रमश: एक-दूसरे में लीन करके अन्त में अमर अद्वैतरूप का अनुभव करना मनुष्य मात्र का लक्ष्य होना चाहिए।

कुण्डलिनी योग केवल सुयोग्य गुरु के निरीक्षण में ही सीखना और अभ्यास करना चाहिए। केवल पुस्तकों के आधार पर इस विषय में पड़ना बड़े भयङ्कर परिणाम वाला हो सकता है। अत: इस योग को साधारण कार्य या परीक्षा की वस्तु न गिनना चाहिए और न ही इस विषय में वर्णित सिद्धियों के फेर में पड़ना चाहिये। अत: जो भी साधना की जाय वह निष्काम होनी चाहिए।

सहायक आचार्य (वेद)
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
मदाऊ, भांकरोटा, जयपुर-302026
चलवाणी-9887669869

महाभारत में वर्णित प्राचीन दर्शन

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

महाभारत में प्राचीन दर्शन का इतिहास विद्यमान है। वहाँ सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, पाशुपत तथा वेद, इन पाँच दर्शनों का वर्णन मिलता है। इन सब का तात्पर्य महाभारत के अनुसार एक ही है अर्थात् इन सबमें परम तत्त्व रूप से भगवान् नारायण ही एकमात्र तत्त्व बताये गये हैं। सांख्य के वक्ता कपिल हैं। योग के वक्ता हिरण्यगर्भ हैं। अपान्तरतमा वेदमत के वक्ता हैं। अपान्तरतमा को ही प्राचीनगर्भ कहा जाता है। भूतनाथ श्रीकृष्ण उमापति ने पाशुपत मत को प्रकट किया। स्वयं नारायण ने पाञ्चरात्र मत को व्यक्त किया। (*शान्तिपर्व*,318.59-61)

महाभारत में सांख्याचार्य कपिल, आसुरि, पंचशिख, गार्ग्य, जैगीषव्य, वार्षगण्य आदि के नाम और विचार आये हैं तथा *शान्तिपर्व* 318.59-61 में अनेक सांख्याचार्यों के नाम हैं। इससे स्पष्ट है कि महाभारतकाल तक सांख्य के विचार-दर्शन का पर्याप्त विकास हो चुका था। महाभारतकालीन सांख्य साहित्य पृथक् रूप से अब उपलब्ध नहीं है। अत: महाभारत में आये सांख्य-दर्शन के विवरण सांख्य-दर्शन के प्राचीनतम उद्धरण तथा उल्लेख हैं। सबसे उल्लेख योग्य तथ्य यह है कि महाभारत के अनुसार सांख्य ईश्वरवादी है।

सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, पाशुपत तथा वेद, ये पाँचों दर्शन ईश्वरवादी हैं। इनके अतिरिक्त महाभारत में निरीश्वरवाद का भी उल्लेख है। (*शान्तिपर्व*, 222.6-7) कुछ लोग कहते हैं कि जगत् नित्य है, कुछ कहते हैं कि जगत् ईश्वर-सहित है, कुछ कहते हैं कि जगत् ईश्वर के बिना ही है, कुछ लोग कहते हैं कि जगत् का कोई प्राकृतिक कारण नहीं है, कुछ कहते हैं जगत् का कारण ईश्वर है और अन्त में कुछ लोग कहते हैं कि जगत् है ही नहीं। इसी प्रकार कुछ लोग स्वभाव को, कुछ कर्म को, कुछ पुरुषार्थ को, कुछ दैव को और कुछ लोग स्वभाव, धर्म, पुरुषार्थ तथा दैव सभी को जगत् का कारण बताते हैं। इन मत-मतान्तरों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि महाभारत में सर्वेश्वरवाद, निरीश्वरवाद, प्रकृतिवाद या प्राकृतवाद, स्वभाववाद, कर्मवाद, दैववाद तथा पुरुषार्थवाद का विचार हुआ है। इनके अतिरिक्त कालवाद, नियतिवाद, यदृच्छवाद, योनिवाद, भूतवाद आदि के भी विचार आये हैं। प्रह्लाद को स्वभाववादी बताया गया है। उनके अनुसार स्वभाव से ही सारे भाव तथा अभाव आते-जाते रहते हैं—

स्वभावात् सम्प्रवर्तन्ते निवर्तन्ते तथैव च।
सर्वे भावास्तथाभावा: पुरुषार्थो न विद्यते।। – *प्रह्लादगीता,* **1.15**

स्वभाव से ही सब कुछ प्राप्त होता है। प्रज्ञा, आत्म-प्रतिष्ठा, शान्ति आदि स्वभाव से ही मिलती है।

स्वभावादेव तत्सर्वमिति मे निश्चिता मतिः।
आत्मप्रतिष्ठा प्रज्ञा वा मम नास्ति ततोऽन्यथा।।– *प्रह्लादगीता,* 1.23

नास्तिक दर्शनों में एक स्थल पर (आदिपर्व, 70.46) लोकायतिक का उल्लेख है। किन्तु उस दर्शन का वर्णन वहाँ नहीं है। अन्यत्र उसका वर्णन किया गया है—वह आन्वीक्षिकी, तर्कविद्या, हेतुवाद, वेदनिन्दा अतिवाद तथा कटुवाद है। (अनुशासनपर्व, 37.12-14) स्पष्टत: यहाँ आन्वीक्षिकी को व्यर्थ कहा गया है। ऐसे लोगों को अन्यत्र नास्तिक कहा गया है, क्योंकि वे कहते हैं कि आत्मा, धर्म, परलोक और मर्यादा नहीं हैं।

पाञ्चरात्र दर्शन

प्रो. सङ्गमलाल पाण्डेय ने महाभारत के मूलदर्शन को पाञ्चरात्र दर्शन माना है तथा अपने ग्रन्थ *भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण*, पृ. 48 में इस प्रकार सिद्धान्तित किया है कि– महाभारत के सभी दर्शनों की एकवाक्यता पर बल दिया है तथापि उसका प्रमुख दर्शन पाञ्चरात्र है। इसी पर सात्वत धर्म या नारायण-धर्म आधारित है।

पाञ्चरात्र एक महान् उपनिषद् है। यह चारों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न है। इसमें सांख्य और योग का भी समन्वय है। उसका गान साक्षात् नारायण के मुख से हुआ है। नारद जी ने इसको श्वेतद्वीप में सुना था। उन्होंने ही पुन: इसका प्रचार किया—

इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम्।
सांख्ययोगकृतं तेन पाञ्चरात्रानुशब्दितम्।
नारायणमुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयत् पुनः।। —*नारायणीयगीता,* 111.112

इस दर्शन के अनुसार नारायण ही एकमात्र देवता है। वे ही सनातन सत्य हैं। वे विश्वात्मा चतुर्मूर्ति हैं। उनकी चार मूर्तियाँ या व्यूह वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध हैं। वासुदेव पुरुषोत्तम हैं। उन्हीं से अव्यक्त की उत्पत्ति हुई है। अव्यक्त को ही कुछ लोग प्रधान या प्रकृति कहते हैं।

तस्मात् प्रसूतमव्यक्तं प्रधानं तं विदुर्बुधाः। —*नारायणीयगीता,* 111.29

अव्यक्त से व्यक्त की उत्पत्ति हुई है। इसी व्यक्त को लोग महान् आत्मा या अनिरुद्ध कहते हैं। स्पष्ट है कि अव्यक्त को ही पाञ्चरात्र में प्रद्युम्न माना जाता है। फिर अव्यक्त वासुदेव से साक्षात् नहीं उत्पन्न है। यह सङ्कर्षण से उत्पन्न है ओर सङ्कर्षण साक्षात् वासुदेव से उत्पन्न है। पहले नारायण एकमूर्ति थे। बाद में धर्म-विस्तार के लिए उन्होंने अपने को चार मूर्तियों में व्यक्त किया—

एक मूर्तिरयं पूर्वं जाता भूयश्चतुर्विधा। — *शान्तिपर्व,* 334.16

भगवान् के भक्त कभी एक व्यूह अर्थात् वासुदेव की, कभी दो व्यूह अर्थात् वासुदेव और सङ्कर्षण की, कभी तीन व्यूह अर्थात् वासुदेव, सङ्कर्षण तथा प्रद्युम्न की और कभी चारों व्यूहों की उपासना करते हैं।

एकव्यूहविभागो वा क्वचिद् द्विर्व्यूहसञ्ज्ञितः।
त्रिर्व्यूहश्चादिसंख्याश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते।। — *शान्तिपर्व,* 348.57

किन्तु प्रत्येक प्रकार की उपासना एकान्त-धर्म है। उसके लिए एकान्त-निष्ठा, ऐकान्तिक भक्ति या एकाग्रचित से की गई उपासना की आवश्यकता है। इसी कारण पाञ्चरात्र को एकान्त-धर्म भी कहते हैं। एकान्त भक्त अपने को नारायण के प्रति समर्पित कर देता है।

यह महान् धर्म है। यही सनातन धर्म है। इसमें धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष चारों पुरुषार्थों का समन्वय है। इसे पहले सात्वत लोगों ने ग्रहण किया था। अत: यह सात्वत धर्म कहा जाता है। सात्वत यदुवंशी थे। अत: नारायण का जो अभेद कृष्ण से किया गया उसका मुख्य कारण सात्वतों के बीच इस धर्म का प्रचार था तथा कृष्ण का सात्वतों का महापुरुष होना था।

पाञ्चरात्र को लेकर एक यह विवाद प्रचलित है कि पाञ्चरात्र वैदिक दर्शन है या अवैदिक? शङ्कराचार्य का कहना है कि पाञ्चरात्र अवैदिक दर्शन है। किन्तु रामानुज का कहना है कि यह वैदिक दर्शन है। इस विवाद में शङ्कराचार्य का ही मत अधिक उचित जान पड़ता है क्योंकि (1) पाञ्चरात्र की उत्पत्ति श्वेतद्वीप में बतायी गयी है, (2) पाञ्चरात्र के प्रथम अनुयायी सात्वत लोग थे जो वेदपाठी ब्राह्मण नहीं थे और जिनके अनार्यता इतिहास-सिद्ध हैं, (3) पाञ्चरात्र को स्वयं महाभारत में वेद से पृथक् करके प्रतिपादित किया गया है, (4) पाञ्चरात्र में वेद की निन्दा है और उसमें कहा गया है कि जब बहुत-से वेदपाठी लोगों को वेद से शान्ति नहीं मिली थी तब उन्होंने पाञ्चरात्र के द्वारा शान्ति प्राप्ति की थी तथा अन्त में (5) पाञ्चरात्र आगम-परम्परा के अनुकूल था।

किन्तु पाञ्चरात्र की उत्पत्ति भले ही वेद-बाह्य स्रोतों से हुई हो, कालान्तर में उसका समन्वय वेदमत से किया गया और यह प्रयास तो महाभारत में ही स्पष्ट है कि पाञ्चरात्र तथा वेद की एकवाक्यता है या पाञ्चरात्र वैदिक धर्म के अनुकूल है। इस प्रकार पाञ्चरात्र एक ऐसा धर्म और दर्शन है जिसमें वैदिक-अवैदिक दोनों संस्कृतियों या परम्पराओं का समन्वय है। महाभारत में इसी को सनातन धर्म या परम धर्म कहा गया है।

आधुनिक युग में डॉ. ब्रजेन्द्रनाथ सील, वेबर, लासेन आदि विद्वानों ने सिद्ध किया है कि महाभारत में वर्णित पाञ्चरात्र धर्म पर मसीही मत का प्रभाव पड़ा है क्योंकि पाञ्चरात्र वैसा ही ऐकान्तिक (एकेश्वरवादी) तथा भक्ति-प्रधान धर्म है जैसा मसीही मत। किन्तु पाणिनि ने वासुदेव शब्द का प्रयोग किया है। ई.पू. दूसरी शती के बेसनगर शिलालेख के अनुसार भागवत हेलियोडोरस ने वासुदेव के सम्मान में एक गरुड़-स्तम्भ स्थापित किया था। गोसुण्डी शिलालेख भागवत सङ्कर्षण और वासुदेव की उपासना का वर्णन करता है और नानाघात के प्रथम शती ई. पू. के शिलालेख में सङ्कर्षण तथा वासुदेव की स्तुति है। इससे सिद्ध है कि पाञ्चरात्र धर्म-दर्शन मसीही मत का पूर्ववर्ती है और उस पर मसीही मत का प्रभाव नहीं पड़ा है। उल्टे, पाञ्चरात्र का ही प्रभाव मसीही मत पर पड़ा होगा अन्यथा दोनों में इतना साम्य न होता।

गीता : स्वरूप एवं दर्शन

गीता शब्द का अर्थ है—गाई गई या कही गई। महाभारत युद्ध के समय युद्ध का परित्याग करने की इच्छा पर अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वही गीता है—

समापोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम्।।

— *महाभारत*, शान्तिपर्व, 348.8

युद्ध में शोकग्रस्त अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुख से इसका (गीता का) उपदेश किया—

चिदानन्देन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्।
वेदत्रयी परानन्दा तत्त्वार्थज्ञानसंयुता।। — *वराहपुराण*, गी.मा. 9

महाभारत (भीष्मपर्व 43.1) के अनुसार—**'या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि:सृता'** के अनुसार भगवान् के मुख कमल से उक्त होने से इसे भगवद्गीता या श्रीमद्भगवद्गीता कहा जाता है।

गीताओं का उपनिषदों से बहुत सामञ्जस्य है। स्वयं व्यास ने घोषणा की है कि उपनिषदों का विस्तार ही महाभारत में किया गया है—

ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया।। —*आदिपर्व,* **1.62**

अनेक जगह उपनिषदों के पूरे श्लोक प्राप्त होते हैं, शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं तथा भावों की छाया तो प्राय: सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। उपनिषद् शब्द का प्रयोग संस्कृत में स्त्रीलिङ्ग में होता है इसलिए इसमें (गीता शब्द में) स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग हुआ है। गीता की अध्याय पुष्पिकाओं में सर्वत्र उपनिषत्सु शब्द का प्रयोग हुआ है। फिर कुछ विद्वान् इसे उपनिषद् मानते हैं तथा कुछ विद्वान् उपनिषदों का सार—

सर्वोपनिषदो गाव: दोग्धा गोपालनन्दन:।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।। — *गीता माहात्म्यम्,* 1।

समस्त उपनिषद् गाय के समान है, उसके दुहने वाले गोपालनन्दन श्रीकृष्ण है, अर्जुन बछड़ा है (जिसे निमित्त बनाकर इसका दोहन हुआ है)। गीता रूपी महान् अमृत दुग्ध है तथा शुद्ध बुद्धि वाला पुरुष इसको पीने का अधिकारी है। श्री अरविन्द ने तो इसे तेरहवीं उपनिषत् माना है। पं. मधुसूदन ओझा इसे स्मार्त उपनिषद् मानते हैं। भगवद् वाणी होने से उपनिषत्सु में आदरार्थे बहुवचन का प्रयोग है। इसलिए अध्याय पुष्पिकाओं में सर्वत्र 'श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु' ऐसा प्रयोग किया गया है। महाभारत शान्तिपर्व 346.10, 348.53 में इसे 'हरिगीतासु' कहा गया है। आचार्य शङ्कर ने स्वभाष्य में 'इति गीतासु' यह बहुवचनान्त प्रयोग किया है। लाघवार्थ 'श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्' की जगह लोक में केवल 'गीता' ही प्रयोग प्रचलित हो गया है।

इसे गीता न कहकर भगवद्वाक्य या भगवद्वचन क्यों नहीं कहा गया है? तो लगता है कि 'गीता' कहने में कोई विशेष अभिप्राय है। इस विषय में द्रष्टव्य है कि गीता में 13.14 पर कहा है—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधै: पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितै:।।

इस ज्ञान का विविध प्रकार की वेदऋचाओं से गायन किया गया है, ऋषियों के द्वारा (उपनिषद्रूप में) अनेक प्रकार से गायन किया गया है, युक्तियुक्त निश्चायक ब्रह्मसूत्र के पदों के द्वारा गायन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है इस श्लोक के क्रियावाचक 'गीतं' शब्द से गीता शब्द व्युत्पन्न किया गया है। इससे यह अर्थ ध्वनित होता है कि वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र में जिस ज्ञान का वर्णन किया गया है वही गीता में है तथा जिस प्रकार वह ज्ञान श्रेष्ठतम है वैसे ही गीताओं का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। इसमें केवल न शब्दों का ही संगीत है

अपितु भावों का भी संगीत है। अनेक प्रकार के आध्यात्मिक, अधिदैविक तथा आधिभौतिक भावों का संगीत इसमें उपलब्ध है, जिसे ऋषियों की दिव्यदृष्टि प्रभावित करती है। इसमें जीव, प्रकृति, ईश्वर, ज्ञान, कर्म, भक्ति, सांख्य, योग तथा वेदान्त सम्बन्धी विविध भावों का विचित्र सामञ्जस्य के गायन प्रस्तुत हुआ है जिसे योगी अपने दिव्य अन्तःकरण में अनुभूत करते हैं। वेदव्यास ने भावों के संगीत को शब्दों के संगीत से युक्त कर दिया है जिससे मणिकाञ्चन संयोग हो गया है। श्री अरविन्द ने इसे महासंगीत कहा है। कुछ अन्य विद्वानों ने इसे दिव्य संगीत कहा है। अत: यह भगवान् का परम वाक्य, उक्ति या वचन होने पर भी दिव्य संगीत तथा उपनिषद् रूप से होने से 'भगवद्गीता' कहलाती है।

भारतीय परम्परा के श्रद्धा व विश्वास के आधार पर गीता के कर्त्ता भगवान् कृष्ण हैं पर जिस रूप में गीता उपलब्ध है उस रूप में गीता का प्रणयन श्रीकृष्ण ने नहीं किया होगा। कृष्ण के मध्यमावाक् में दिये गए उपदेशों का सङ्कलन महाभारतकार वेदव्यास ने स्वकवित्व शक्ति के अनुरूप गीता के वर्तमान स्वरूप में किया है। अत: कृष्ण के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को काव्य रूप प्रदान करने वाले व्यास हैं। इस गीता के विषयवस्तु की व्याख्या हेतु *भागवत* का एकादश स्कन्ध, *पद्मपुराण* तथा *वराहपुराण* का गीता माहात्म्य, *योगवासिष्ठ* के निर्वाण प्रकरण में कथित गीतासार—इसके महत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं। अत: गीता महाभारत का महत्त्वपूर्ण अंग है तथा निश्चय ही वेदव्यास की ग्रन्थ रूप में रचना है तथा नित्य पठनीय है।

इस ग्रन्थ को संवाद शैली या प्रश्नोत्तर रूप शैली में लिखा गया है। पुराणों में इस तरह की शैली का पर्याप्त प्रयोग उपलब्ध होता है। अध्यायान्त पुष्पिकाओं में 'कृष्णार्जुनसंवादे' कहा गया है। प्राचीन वैदिक संवाद सूक्तों, ब्रह्मोद्य चर्चाओं, इतिहास-पुराण ग्रन्थों तथा बाद के साहित्य ग्रन्थों में भी संवाद शैली उपलब्ध है। इस शैली के आश्रयण से नाटकीयता, रोचकता, स्वाभाविकता, सरलता तथा उत्सुकता का पल्लवन होने से शिष्यों को अध्ययन में विशेष रसास्वादन प्राप्त होता है। इसकी शैली के बारे में ई.डी. प्राईस ने लिखा है कि यह एक नाट्य पद्य काव्य है और इसकी शैली प्लेटो के संवाद से मिलती है।

गीता की पुष्पिकाएँ बड़ी सार्थक हैं उनमें वर्ण्य विषय को सूक्ष्मता से संकेतित किया गया है। ॐ ब्रह्मवाचक है, 'तत्सत्' उसकी अबाधित सत्ता का बोध कराता है। इस ग्रन्थ का पूर्ण नाम 'श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्' है, आदर के लिए बहुवचन है। ब्रह्मज्ञान को प्रतिपादक होने से 'ब्रह्मविद्यायां' कहा गया है। आत्मा को अज्ञानावरणध्वंसपूर्वक स्व-स्वरूप परमात्मा से युक्त करने वाले योगशास्त्र का वाचक 'योगशास्त्र' कहा गया है। संवादशैली के द्योतनार्थ 'कृष्णार्जुनसंवादे' कहा गया है फिर अध्याय के विषय शीर्षक स्पष्ट किए हैं तथा अन्त में अध्याय की संख्या निर्देश करके समाप्ति द्योतक पद लिखे गए हैं।

विभागाध्यक्ष,
दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
चलवाणी-9413970601